इस युग के दधीचि

सत्याग्रह और विश्व-शान्ति

"आप मुझे सत्याग्रह की दशा में अपनी क्रियाशीलतायें बन्द कर देने के लिए कहें तो यह मेरे जीवन को समाप्त कर देने के समान होगा। यदि मैं पशुबल के स्थान पर आत्मिक शक्ति के उपयोग को व्यापक रूप दे सकूँ, तो मैं जानता हूँ कि मैं आपको ऐसा हिन्दुस्तान (बना) दे सकता हूँ जो सार संसार को चुनौती दे सकता है। मैं कष्ट-सहन के इस अनन्त विधान को अपने जीवन में व्यक्त करने के अनुशासन का पालन करूँगा, और इसे उन लोगों को भेंट करूँगा, जिनमें इसे ग्रहण करने की चाह है, और यदि मैं दूसरी क्रियाशीलताओं में भाग लेता हूँ, तो इसका ध्येय यही है कि यह विधान अद्वितीय रूप में उत्कृष्ट है।"—*१९१७ में युद्ध-प्रयत्न सम्बन्धी एक वक्तव्य में गाँधीजी।*

भूमिका

इस पुस्तक में श्री रंगनाथ दिवाकर ने महत्वपूर्ण सत्याग्रह आन्दोलनों में से कुछ ऐसों का संक्षिप्त वर्णन किया है जो या तो महात्मा गांधी द्वारा अथवा उनके पथ-प्रदर्शन में संचालित हुए हैं। गांधीजी अपने २१ वर्ष के दक्षिण-अफ्रीका-प्रवास के बाद १९१५ में भारत लौटे थे। दक्षिण अफ्रीका में ही उन्होंने बुराई के विरुद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध के अद्भुत और अद्वितीय अस्त्र की शैली—टेक्नीक की खोज और विकास का काम किया था और उसे 'सत्याग्रह' का नाम दिया था। सत्याग्रह सक्रिय-प्रतिरोध से बुनियादी तौर पर भिन्न इसलिये होता है कि वह सैद्धान्तिक रूप से हिंसा का किसी भी रूप में इस लिये परित्याग नहीं करता कि वह कमजोरी या असमर्थता के कारण हिंसात्मक प्रतिरोध के योग्य नहीं होता। यह अन्तर उन सभी आन्दोलनों में प्रकट हुआ था जिनका प्रारम्भ और नेतृत्व गांधीजी ने किया था। सत्याग्रही का ध्येय यह नहीं होता कि वह विरोधी को परेशान करके उससे अपनी माँगें मनवा लेने को बाध्य करे बल्कि उससे अपना दृष्टिकोण मनवा के जिसमें कि वह (विरोधी) अपनी स्वतन्त्र इच्छा से ही उस (सत्याग्रही) के दृष्टिकोण को अपना ले। इसीलिये प्रत्येक सफल सत्याग्रह का स्वाभाविक परिणाम बिना कोई कटुता

ठीक वही उद्देश्य की प्राप्ति है और इस प्रकार यह (सत्याग्रह) प्रतिरोधी और विरोधी दोनों ही के लिए आशीर्वाद स्वरूप है। जिस दिन से *महात्मा गांधी ने भारत की स्वाधीनता* प्राप्त करने का आन्दोलन आरम्भ किया तब से यह आन्दोलन पचीस वर्ष से भी अधिक चला और तब कहीं जाकर भारत को ब्रिटेन से स्वतन्त्रता मिल सकी है। देश ने मुख्य रूप से उनके अहिंसात्मक प्रतिरोध के कार्यक्रम का अनुसरण किया है। यद्यपि किसी-किसी अवसर पर भूल चूक भी हुई है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि इस लम्बी अवधि में आवेश के कारण उपस्थित होने पर भी देश में बड़े पैमाने पर खून-खराबी हुई है। अन्ततः ब्रिटेन को सारे अधिकार भारतीयों को हस्तान्तरित करके इस देश से चले जाने की बात स्वीकार कर लेनी पड़ी और इस प्रकार इस बात का एक सबल और चमत्कारपूर्ण उदाहरण उपस्थित हो गया कि अहिंसा किस उद्देश्य और अप्रकट रूप से ऐसी परिस्थितियों में भी सफलता प्राप्त करती है जब सभी कुछ समाप्त हुआ प्रतीत होता है। एक राष्ट्र के रूप में ब्रिटेन भी हिन्दुस्तानियों की अपेक्षा इस बात से कम प्रसन्न नहीं है कि एक ऐसे संघर्ष का सुखद अन्त हुआ है जो अपने नेता ही के समान ही अद्वितीय था। इस पुस्तक के द्वारा पाठक सत्याग्रह की शैली और उसकी क्रिया का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु अधिकतर सूचना और विवरण प्राप्त करने के लिए लेखक के विस्तृत ग्रन्थ और महात्मा गांधी की पुस्तकों और लेखों का सहारा आवश्यक रूप में लेना पड़ेगा। साथ ही इस पुस्तक के सहायक ग्रन्थों में जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं उनसे सहायता ली जा सकती है।

नई दिल्ली
२४-१०-४८

राजेन्द्रप्रसाद

परिचय

इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है पाठक को स्वयं महात्मा गांधी के नेतृत्व और संचालन में चलाये गये सत्याग्रह आन्दोलनों की रूपरेखाओं से परिचित कराना । इसके द्वारा पाठक झगड़ों और संघर्षों से निपटने के गांधी-मार्ग के क्रियात्मक ढंग को समझ सकेंगे । मैं 'रूपरेखाओं' की ही बात इसलिए करता हूँ कि इतने छोटे स्थान में आन्दोलनों की पूरी कहानी नहीं दी जा सकती । इन आन्दोलनों में से अधिकांश के बारे में पृथक् पुस्तकें हैं और सहायक ग्रन्थों में मैंने ऐसी पुस्तकों के नाम दे दिये हैं । जिन लोगों में उत्सुकता है और वे इस विषय का अध्ययन अच्छी तरह करना चाहते हैं उन्हें उनसे मदद लेनी पड़ेगी ।

निस्सन्देह मैंने इसमें वीरमगाम-कर-विरोधी आन्दोलन-जैसे संघर्षों को सम्मिलित किया है यद्यपि वे भी सत्याग्रह के सिद्धान्तों पर ही आधारभूत थे । यह इसलिए कि मैंने अपने को केवल उन्हीं संघर्षों तक सीमित रखा है जिनका सम्बन्ध बड़ी संस्थाओं या जन-समूह से रहा है । मैंने गांधीजी के ऐसे अनशनों और सत्याग्रह को भी इसमें सम्मिलित नहीं किया जो व्यक्तिगत ढंग के थे, यद्यपि वे थे सार्वजनिक-हित के लिए—हाँ उनका सम्बन्ध सर्वसाधारण या दलों और समूह से नहीं था

मैंने संक्षेप में प्रासंगिक और तथ्यपूर्ण ढंग से ही इन घटनाओं का समक्ष में आत्म-योग्य चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। किन्तु मैं गांधीजी के व्यक्तित्व और उनके विशिष्ट गुणों को इन परिच्छेदों में उभरने से नहीं दबा सका हूँ। भला मैं ऐसे सम्पन्न और आकर्षक व्यक्तित्व को दिखाने से कैसे रोक सकता था जिसके क्रियाकलाप का मैं वर्णन कर रहा था? इसके अतिरिक्त मैं इस प्रकार के रोक का औचित्य कैसे मान सकता था जब कि वह और उनके मित्र दोनों ही घनिष्ठ रूप से व्यक्तित्वपूर्ण थे। ऐसे मामलों में व्यक्ति और उसके घन क्रिया-कलापों का हम विच्छेद नहीं कर सकते जो उसके अस्तित्व के अंग हैं। मैं समझता हूँ कि यदि मैं उनके व्यक्तित्व को इस पुस्तक में छिपाये रहने में सफल होता तो यह अधिक शुष्क होती।

सत्याग्रह की इन कहानियों की रूपरेखाओं को समुचित पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए मैंने सत्याग्रह के सिद्धान्तों और महत्वों का संक्षिप्त वर्णन पहले परिच्छेद में किया है। पाठक को इस विषय का विस्तृत वर्णन मेरी दूसरी पुस्तक 'सत्याग्रह इतिहास और थ्योरी' मे मिलेगा जिसका भारतीय संस्करण हिन्द कितास्स बम्बई ने और अमरीकन संस्करण 'सत्याग्रह सत्य की शक्ति' हा अनिस्ट स्माइलेरो सीरीज मे प्रकाशित किया है। मुझे आशा है कि इस पुस्तक के पहले परिच्छेद के साथ ये संक्षिप्त कहानियाँ पढ़कर पाठक यह अनुभव करेगा कि गांधीजी जिस बात का उपदेश देते और अमल करते थे वह केवल भारत और उसकी स्थिति के लिए ही लागू नहीं होता था प्रत्युत वह इसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर संसार के किसी भी भाग में दुहराये जाने की क्षमता रखता है। सत्याग्रह अपने प्रयोग के लिए किसी भौतिक या भौगोलिक स्थिति पर अथवा राजनीतिक विचार पर नहीं निर्भर——, प्रत्युत वह तो मानव स्वभाव

और मानव मनोविज्ञान की आध्यात्मिकता पर निर्भर करता है।

यद्यपि आरम्भ से ही गांधीजी को सत्याग्रह के नये अस्त्र की शक्ति का पूर्ण ध्यान था, फिर भी इन्होंने उसके प्रयोग एक वैज्ञानिक विधि से किये। उनमें अचूक विश्वास और अपार धीरज था। उन्हें ध्येय और साधन के बारे में कभी भ्रम नहीं हुआ था और उनका सदा यह विश्वास रहा है कि नैतिक साधनों द्वारा ही नैतिक उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है। यही उनकी प्रणाली के पूर्ण विकास का रहस्य था। वे इसे प्रायः 'सत्याग्रह विज्ञान' और 'सत्याग्रह-कला' कहा करते थे।

यह दुःख की बात है कि गांधीजी को कुछ खास परिस्थितियों में सत्याग्रह के प्रयोग का समय और अवसर नहीं मिला। वे परिस्थितियां थीं—सशस्त्र आक्रमण का अहिंसात्मक विरोध अथवा दो राष्ट्रों के बीच अहिंसात्मक हस्तक्षेप। अब यदि नयी पीढ़ी का विश्वास इस साधन में है तो उसे इन प्रयोगों को आगे चलाना चाहिये।

यह तो स्पष्ट है कि वर्तमान अवस्था में सरकारों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अहिंसा पर आधारभूत हों। यदि अहिंसा या सत्याग्रह की प्रगति होती है तो यह उन्हीं संघों पर, दलों और समाजों के संगठन से हो सकती है। केवल इसी प्रकार इस सिद्धान्त के विकास का प्रयत्न सम्भव है। सत्याग्रह धार्मिक प्रवृत्तिवाले व्यक्तियों और सन्तों के लिये चारित्रिक कसौटी बन गया और गांधीजी ने दिखा दिया कि इसे दलों और सम्पूर्ण जनता तक व्याप्त किया जा सकता है, और अब एक समय आ सकता है जब राष्ट्र और राज्य इस सिद्धान्त पर संगठित हो सकते हैं।

गांधीजी नये प्रयोगों से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करके चले

गये। व हमारे लिए ऐसे क्षेत्र के प्रयोगों की देन छोड़ गये हैं जो अब तक अज्ञात था। अब उन लोगों को, जो धरती पर शान्ति और मनुष्य में शुभेच्छा का नवसंचार करना चाहते हैं, चाहिए कि उन प्रयोगों का अध्ययन वैज्ञानिक समझ के साथ करें और इस नये नैतिक अस्त्र का परीक्षण सभी प्रकार की बुराइयों का विरोध करने में करें। यद्यपि वह प्रकाश जो हमारे मार्ग का अब तक प्रदर्शक रहा है, इस संसार में अब दीप्त होता नहीं दिखाई दे रहा है पर उसने अपने पीछे जो प्रकाश छोड़ दिया है वह कोटि-कोटि जनता का शताब्दियों तक मार्ग दर्शन करता रहेगा।

५, सफदरजंग रोड नई दिल्ली
१५ अक्तूबर, १९४९

रंगनाथ दिवाकर

सत्याग्रह का महत्व

'सत्याग्रह' एक ऐसा शब्द है जिससे हम काफी परिचित हो चुके हैं। क्रियात्मक रूप से यह शब्द गाँधीजी के नाम का पर्यायवाची बन गया है। सबसे पहले १९०६ ई० में गाँधीजी ने ही इस शब्द का प्रयोग अहिंसात्मक-प्रतिरोध आन्दोलन के अर्थ में किया जिसका नेतृत्व उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के अन्याय और भेदभावपूर्ण कानून के विरुद्ध किया था। उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि उनका आन्दोलन निष्क्रिय प्रतिरोध से सारतत्व में भिन्न है इसलिए उन्होंने यह नया शब्द रखा। पाश्चात्य देशों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में 'निष्क्रिय-प्रतिरोध' का जो अर्थ समझा जाता है और जैसा हम अब समझते हैं वह एक दुर्बलों निःशस्त्रों और असहायों का अस्त्र है। वहाँ हिंसा का परित्याग सिद्धान्त के रूप में नहीं बल्कि हिंसा के साधनों के अभाव में या पयस सम्प्रत के कारण किया जाता है। यह अस्त्र का प्रयोग उस अवस्था में कर सकता है जब वे प्राप्त हों या जब सफलता का युक्तियुक्त अवसर हो। निष्क्रिय प्रतिरोध सशस्त्र प्रतिरोध की तैयारी में या उसके सहयोग में भी हो सकता है। इसका भीतरी उद्देश्य शत्रु को परेशान करना होता है और इस प्रकार यह उसे क्रियाकलाप के अभीष्ट मार्ग का अनुसरण करने के लिए बाध्य करता है। उसमें प्रेम के लिए तो कोई स्थान है ही

नहीं । इसका प्रयोग हम अपने निकटतम के विरुद्ध इसलिए नहीं कर सकते, कि इसका आधार घृणा और अविश्वास पर होता है। इसमें रचनात्मक क्रियाशीलता के लिए कोई स्थान नहीं होता। यह कोई जीवन दर्शन नहीं है।

इसके विपरीत सत्याग्रह एक प्रेम का विधान है सभी के लिए प्रेम का मार्ग है। वह सभी परिस्थितियों और सभी रूपों में सिद्धान्त-रूप में हिंसा का पूर्ण परित्याग करता है। वह किसी भी प्रकार की ऐसी हिंसापूर्ण क्रियाशीलता के साथ कदापि नहीं चल सकता जिसमें व्यक्ति और सम्पत्ति की क्षति सम्मिलित हो। इसके पीछे यह भावना है कि विरोधी का विनाश न हो और न वह परेशान किया जाय बल्कि आवश्यक होने पर सहानुभूति, धैर्य और कष्टसहन के द्वारा उसका मत-परिवर्तन किया जाय अथवा उस पर विजय प्राप्त की जाय। सत्याग्रह सभी बुराइयों से संघर्ष करते हुए और उनसे कदापि समझौता न करके भी बुराई करनेवाले तक प्रेम के द्वारा पहुँचता है। सत्याग्रही का मानव स्वभाव और उसकी अच्छाइयों में अनन्त विश्वास होता है। अस्त्र के रूप में सत्याग्रह का उपयोग अपने निकट और प्रियतम के विरुद्ध भी किया जा सकता है। वह (सत्याग्रह) प्रेम के कारण व्यवहार में लाया जाता है और प्रेमपात्र के लिए अधिकतम मात्रा में कष्टसहन करने की इच्छा रखता है। सत्याग्रही जब संघर्ष में नहीं लगा होता तो वह रचनात्मक सामाजिक क्रियाशीलता में सेवा और त्याग के भाव से लगा रहता है।

गाँधीजी के हाथों में सत्याग्रह जीवन-दर्शन और जीवन मार्ग के रूप में विकसित हुआ है। एक सत्याग्रही के लिए सत्य सर्वोत्कृष्ट ध्येय है और प्रेम एकमात्र सर्वोत्तम साधन। प्रेम सारतत्व में अभिन्नता के अनुभव का भावात्मक परिणाम है। वह प्रेम के ध्येय के साथ एकता के अनुभव का उत्तर-परिणाम है।

गाँधीजी के लिए सभी जीव एक और पवित्र थे। वे कहते थे कि किसी भी जीव को कष्ट पहुँचाने का मतलब है अपने को और स्वयं भगवान को दुःख देना। सभी प्राणियों के साथ अभिन्नता का उनका अनुभव इसी प्रकार का था। आलडस हक्सले ने अहिंसा की व्याख्या सभी जीवों की बुनियादी एकता के क्रियात्मक परिणाम के रूप में की है। इस एकता की अनुभूति से स्वाभाविकतया सम्मिलन-क्षम आवेग का विकास होता है। सत्याग्रह जीवन-मार्ग के रूप में कोई एक क्रिया या क्रियासमूहों की बन्धन-रज्जु नहीं है, बल्कि यह एक आन्तरिक भाव और अस्तित्व का सहज-क्षम स्वरूप है। यह प्रत्येक वस्तु में अहिंसा, प्रेम-विधान और आवश्यकता हुई तो कष्टसहन, के द्वारा सत्य की अनवरत खोज है प्रेम भाव निष्काम-सेवा का रूप धारण कर लिया करता है क्योंकि यह उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, और उसके परिणामस्वरूप जो आनन्द और मुग्धता प्राप्त होती है वही उसकी सम्प्राप्ति है।

यहाँ हम सत्याग्रह के नैतिक अस्त्र के रूप पर विचार करते हैं जो सभी बुराइयों से संग्राम करने और कुल-संकल्प संघर्षों के उपाय के रूप में काम आता है जिससे शान्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। हम युगों से इससे परिचित हैं—यह आत्मरक्षा के लिए—विशेष रूप से धार्मिक क्षेत्र में काम लाया जाता रहा है। किन्तु सिद्धान्ततः और सामूहिक रूप में अन्याय के विरुद्ध इसका प्रयोग कुछ अभिनव और मौलिक है। सत्याग्रही मानव स्वभाव का बुनियादी भलाई में विश्वास करता है और सदा यह आशा रखता है कि मनुष्य की विवेक-बुद्धि जाग्रत होगी। उसे कष्टसहन और त्याग के प्रति अनुकूल मानवीय प्रतिक्रिया का निश्चय होता है। उसका प्रेम के विधान में उतना ही विश्वास होता है जितना गुरुत्वाकर्षण के विधान में होता है।

—

मनुष्य और मनुष्य के बीच संघर्ष में जो पाशविक हिंसा के ढंग काम में लाये जाते हैं निश्चय ही सत्याग्रह उसका स्थान लेने के लिए है। यह सत्य पर आधारभूत है, अहिंसा के द्वारा परिचालित होता है और यह नैतिक दबाव के द्वारा विरोधी के हृदय-परिवर्तन के रूप में अपना ध्येय प्राप्त कर लेता है। जो इसका प्रयोग अस्त्र के रूप में करना चाहते हैं उन्हें कम-से कम इसमें क्रियात्मक विश्वास तो होना ही चाहिए। यह प्रणाली अन्य सभी ढंगों की अपेक्षा अधिक सुविधापूर्ण है। इसका उपयोग कैसी भी प्रतिकूलता में किया जा सकता है—चाहे विरोधी शारीरिक दृढ़ता और हिंसा कौशल में कैसा ही निष्णात क्यों न हो। आप शारीरिक दृष्टि से चाहे कैसे ही दुर्बल क्यों न हों और हिंसा के उपयोग से बिलकुल ही अनजान क्यों न हों फिर भी यदि आप निडर हैं और आप में दृढ़ संकल्प शक्ति है तो आप संसार के सर्वाधिक शक्तिशाली से भी मोर्चा ले सकते हैं, और यह बात अकेले भी सम्भव है। संख्या का यहाँ कोई महत्व नहीं है। यह शुद्ध नैतिक अस्त्र है और इसमें आपको संख्या-बल की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु यह तथ्य कि यह एक नैतिक अस्त्र है, प्रयोगकर्त्ता पर यह बन्धन लगा देता है कि वह इसका उपयोग अनैतिक उद्देश्य से या स्वयं दोषी होने की अवस्था में न करे। कोई भी व्यक्ति इसका प्रयोग आत्मशुद्धि के बाद ही आरम्भ कर सकता है। उदाहरण के लिए कोई दासों का स्वामी मानव श्रम के शोषण के विरुद्ध सत्याग्रह नहीं कर सकता और न कोई इसे मुनाफाखोरी करने या अनुचित आर्थिक लाभ उठाने के लिए ही कर सकता है।

चूँकि सत्याग्रह बुराई का नाश करने के लिए है—बुराई करनेवाले का नाश करने के लिए नहीं, इसलिए वह सेवा और कष्ट-सहन के द्वारा विरोधी व्यक्ति के हृदय और मस्तिष्क तक

पहुँच जाता है। सत्याग्रही इस बात को अपना कर्तव्य समझता है कि वह विरोधी का हृदय-परिवर्तन करके, उस अपने विचार का बना ले उसका नाश न करे। सत्याग्रही के विश्वास का यह उत्तर परिणाम है कि वह स्वयं कष्ट-सहन करके विरोधी के भीतर बैठे मनुष्य को जगा दे। उसकी क्रियाशीलता की यह पहली शर्त है कि विरोधी का मत बदल जाय। सत्याग्रह विरोधी के प्रति अहिंसा-भाव की तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। अहिंसात्मक-प्रतिरोध का सार यह है कि विरोधी के व्यक्तित्व को कोई हानि पहुँचाने का इरादा भी न रखे। सामान्यतः यही बात सम्पत्ति के बारे में भी कही जा सकती है। परन्तु सम्पत्ति के बारे में कुछ अपवाद भी हो सकते हैं—उदाहरण के रूप में वह सम्पत्ति जो समाज के लिए बिल्कुल ही हानिकारक हो। शस्त्रास्त्र और शराब को इस प्रकार की सम्पत्ति समझा जा सकता है।

सत्याग्रह कोई व्यक्तिगत रूप में भी कर सकता है और दल या समूह के रूप में भी। उस समय यह पूछना व्यर्थ है कि सत्याग्रह जैसा नाजुक और उच्च नैतिक अस्त्र—स्थूल, अशिक्षित और असंगठित जन समूह-द्वारा काम में लाया जा सकता है या नहीं। यह बात साफ बुद्धि की और इतिहास सिद्ध है कि इसका उपयोग इस रूप में किया जा सकता है। दक्षिण अफ्रीका के अतिरिक्त भारत में बारडोली सिद्दापुर, बोरसाद और तामलुक के सत्याग्रह संग्राम राष्ट्रव्यापी पैमाने पर चल चुके हैं, और वे उपर्युक्त बात के प्रमाण हैं। क्या संसार के और किसी भाग में ऐसे दरिद्र निरक्षर और विनम्र लोग हैं जैसा कि भारत का जन समूह है? फिर भी गत बत्तीस वर्षों में भारत विभिन्न अवसरों पर आधे दर्जन बार सामूहिक सत्याग्रह कर चुका है। इस अस्त्र का प्रयोग अभूतपूर्व पैमाने पर किया गया और

यह कारगर सिद्ध हो चुका है। इसीलिए अब यह सम्भव हो गया है कि इसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन कर उससे वास्तविक लाभ उठाया जाय।

सत्याग्रह अन्तिम होते हुए भी शान्तिपूर्ण अस्त्रों में सबसे शक्तिशाली है। सभी उपाय—वैधानिक आन्दोलन आदि के समाप्त हो जाने पर सत्याग्रह की बारी आती है। यह हिंसात्मक सीधी कार्यवाही के स्थान पर आता है। यह तब आता है जब आमतौर पर लोग सदा की तरह हिंसात्मक संघर्ष ही काम में लाते हैं। असन्तोष आक्रोश का अंग नियमन की मात्रा और अन्तिम अस्त्र का उपयोग करने की अनिवार्यता सत्याग्रह में भी वही होती है जैसी हिंसात्मक संघर्ष में होती है।

सामूहिक सत्याग्रह न तो कोई नूतनता है न अज्ञात अस्त्र। यह भी बात नहीं है कि यह एक मानचित्रहीन दुर्गम सागरों की यात्रा हो। १९१९ ई० में ही गाँधीजी ने कहा था—"मेरी राय में सत्याग्रह का सौन्दर्य उसकी क्षमता ऐसी महान् है और सिद्धान्त इतना सरल कि उसका उपदेश बच्चों तक को दिया जा सकता है। मैंने ऐसे हजारों पुरुषों स्त्रियों और बच्चों को इस (सत्याग्रह) का उपदेश दिया है जिन्हें (दक्षिण अफ्रीका में) शर्तबन्द प्रवासी भारतीय कहते हैं, और उसका परिणाम बहुत ही उत्तम हुआ है। ('यंग इण्डिया ४ नवम्बर, १९१९) और उन्होंने फिर लिखा—"कोई सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ले या नहीं इस बात में सन्देह नहीं हो सकता कि सत्याग्रह का भाव जनता में व्याप्त हो गया है। ('यंग-इण्डिया' १ मार्च १९२) सत्याग्रह का सफलतापूर्ण वैज्ञानिक और सफल प्रयोग कम-से-कम पचास वर्ष तक जीवन के सभी क्षेत्रों में करके गाँधीजी का यह निश्चित मत बन गया कि जनसमूह अनु

शासन द्वारा सहज ही परिचालित हो सकता है और यह सत्याग्रह अस्त्र का उपयोग प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकता है।

आवश्यकता पड़ने पर सत्याग्रह के बारे में स्वयं गाँधीजी का लिखा हुआ साहित्य प्राप्त हो सकता है। यह सच है कि वे इसके दर्शन और प्रणाली के बारे में जो कुछ लिखते थे उसे संक्षिप्त करने का समय उन्हें कभी नहीं मिला था। किन्तु यदि कोई उनकी तत्सम्बन्धी सभी बातें पढ़ जाय—स्वयं उनके द्वारा परिचालित सत्याग्रह-संग्रामों की कहानियों का अध्ययन कर ले और उनके जीवन और व्यवहार को निकट से समझ ले तो वह उन सिद्धान्तों के सच्चे महत्त्व को समझ सकता है जिन पर गाँधीजी ने अपने लम्बे और गहन रूप से क्रियात्मक जीवन में, अमल किया था। सत्याग्रह उनकी भीतरी अनुभूतियों और उनके आधार पर परीक्षित प्रयोगों का सार था। आज यदि कुछ चुने हुए मनस्वी उनकी इस शिक्षा की ओर आकर्षित हुए हैं तो इसका कारण यह है कि उनकी शिक्षाएँ उच्चतम मानव अनुभवों को प्रकट करती हैं।

सत्याग्रह का उदय

इसे एक घटना-संयोग की विलक्षणता ही समझिए कि अपनी जन्म-भूमि से दस हजार मील दूर दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने राजनीतिक और सामाजिक अन्यायों के विरुद्ध अहिंसामूलक सामूहिक प्रतिरोध की नई प्रणाली का पहला प्रयोग आरम्भ किया था। उन्होंने अपनी इस शैली को लम्बे वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका की सरकार के साथ वहाँ के प्रवासी भारत वासियों के संघर्ष में पूर्ण कर लिया और वे उस (संघर्ष) में सफल हो गये। उन दिनों सत्याग्रह की जो घटनाएँ घटित हुई थीं और वर्षों तक जिस रूप में वह चला था उनका मनोयोगपूर्ण अध्ययन महत्त्वपूर्ण भी है और आवश्यक भी। बुराई के साथ लड़ने के लिए विशुद्धतः नैतिक अस्त्रों के प्रयोग के लिए वह बीज-वपन की अवधि थी। वह वे दिन थे जब उस अहिंसा-पथ के अद्वितीय प्रवर्तक के जीवन का निर्माण-युग था जिस (पथ) का उपयोग बाद में भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किया गया और जो अन्त में मानवता के लिए महान् प्रसाद सिद्ध हुआ।

कुछ अधिक रकम हाथ लगने और नया देश देखने के आकर्षण ने गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका के समुद्र-तट पर पहुँचा दिया था। उन्होंने स्वयं कहा है कि मैं लालच और उत्सुकता के वशीभूत होकर वहाँ गया था। बम्बई में एक बैरिस्टर के रूप में

उन्हें कुछ भी सफलता नहीं मिली थी इसलिए कई एक महीने के बाद वे राजकोट वापस चले गये थे। पर जब दक्षिण अमरीका जाने का अवसर आया तो उन्होंने उसका सदुपयोग किया। पोरबन्दर की किसी धनाढ्य व्यापारिक पेढ़ी की ओर से व कानूनी अधिकार पत्र प्राप्त करके वहां गये। वे १८९३ ई० में जहाज द्वारा वहां के लिए रवाना हुए थे।

किन्तु अपने कानूनी काम के सिवा गांधीजी ने वहां और क्या देखा ? जिस दिन वे वहां जहाज से उतरे उसी दिन उन्होंने देखा कि वहां हिन्दुस्तानियों की कोई बड़ी इज्जत नहीं है उनके लिए जीवन की यह स्थिति असह्य हो उठी थी। जो हिन्दुस्तानी अपने को 'अरब' कहना पसन्द करते थे उनके अतिरिक्त सभी हिन्दुस्तानियों को 'कुली' कहा जाता था। स्वयं गांधीजी को 'कुली-बैरिस्टर' कहा जाने लगा। जब वे पहले-पहल अदालत में अनियमित रूप में गये तो मजिस्ट्रेट ने उन्हें अपनी हिन्दुस्तानी पगड़ी उतार देने को कहा। स्थानीय समाचारपत्रों ने उन्हें 'अयाचित आगन्तुक' लिखा। मेरित्सबर्ग में उन्हें प्रथम श्रेणी के डब्बे से केवल इस अपराध में नीचे उतार दिया गया कि वे हिन्दुस्तानी थे। एक गाड़ी के कंडक्टर ने उन्हें केवल इसलिए पीटा था कि उन्होंने उसके पांव के पास बैठने से इन्कार कर दिया था यद्यपि वह गाड़ी के अन्दर बैठने के अधिकारी थे। ट्रान्सवाल में तो और भी बुरा हाल था। पहली और दूसरी श्रेणी के टिकट हिन्दुस्तानियों को बड़ी कठिनाई से दिए जाते थे। जोहान्सबर्ग के ग्रायन्ड नेशनल होटल में गांधीजी को जगह नहीं दी। 'नेटाल लॉ सोसाइटी' ने उनका नाम बैरिस्टरों में लिखे जाने का इसलिए विरोध किया कि वे 'श्याम' थे यद्यपि सौभाग्यवश उस संस्था की आपत्ति अदालत ने नहीं स्वीकार की। इस प्रकार सारे दक्षिण अमरीका

में हिन्दुस्तानियों की अप्रतिष्ठा और उत्पीड़न की कोई हद नहीं रही थी।

इस प्रकार के कुछ आरम्भिक अनुभवों के बाद गांधीजी के हृदय को इन प्रश्नों ने हिला दिया कि "मुझे अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए या हिंदुस्तान लौट जाना चाहिए ?" अन्त में उन्होंने फैसला किया कि "इस प्रकार भाग आना तो कायरता होगी। उन्होंने वहां रुककर लड़ने का निश्चय कर लिया। इस निर्णय के फलस्वरूप ही वे दक्षिण "अफ्रीका के अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग" सम्पन्न कर सके।

१८६० ई० में तत्कालीन सरकार के बुलाने पर ही हिंदुस्तानी दक्षिण अफ्रीका में शर्तबन्द मजदूर बनकर गये थे। तब से उनकी संख्या बढ़ती ही गयी और १८६३ ई० तक तो वहां दो लाख के लगभग हिन्दुस्तानी कुली पहुंच गये। उनमें से आधी संख्या उन लोगों की थी जो पहले तो शर्तबन्द कुली बनकर आये थे पर पीछे शर्तबन्दी की अवधि पूरी हो जाने पर स्वतन्त्र नागरिक बन गए। इनमें लगभग एक-चौथाई ही ऐसे थे जो उस देश में स्वतन्त्र नागरिक के रूप में गये और वहां भी स्वतन्त्र रहे। वहां गये हुए हिंदुस्तानियों में विभिन्न भाषा-भाषी अलग अलग जातियों के लोग थे पर गोरों ने न्यूनाधिक रूप में उन सभी को कष्ट पहुंचाया।

दक्षिण अफ्रीका में उन दिनों हिन्दुस्तानियों को अनेक प्रकार की शिकायतें और तकलीफें थीं जिनमें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सभी तरह के कष्ट सम्मिलित थे। उन सभी का उद्भव जातिगत ईर्ष्या-द्वेष से हुआ था जिससे सभी क्षेत्रों में हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध भेदभाव का बर्ताव किया जाता था। दूसरी महत्वपूर्ण बात थी यूरोपियनों और हिन्दुस्तानियों की प्रतिस्पर्द्धा—खासकर व्यापार और धन्धे के

क्षेत्र में। श्रीमत यूरोपियनों को भय था कि हिन्दुस्तानी अपने निम्नकोटि के जीवन-मानदण्ड और सादगी के कारण आर्थिक क्षेत्र में यूरोपियनों को पछाड़ देंगे। इसीलिए यूरोपियन आत्म-रक्षा के नाम पर अपने व्यवहार को उचित बताते थे। अत: इस सामाजिक असमता के अतिरिक्त हिन्दुस्तानियों को और भी कितनी ही त्रुटियों के कारण कष्ट-सहन करना पड़ता था जो भेदभावमूलक कुछ कानून उन पर लागू करके पैदा कर दी गयी थीं। प्रत्येक भूतपूर्व भारतीय मजदूर को दक्षिण अफ्रीका में बसने के कारण ३ पौंड पोल टैक्स देना पड़ता था। सभी बच्चों के लिए—१६ वर्ष से अधिक आयु के प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह कर भरना पड़ता था। बिना लाइसेन्स के कोई भी व्यापार नहीं कर सकता था। यूरोपियनों को तो वह लाइसेन्स केवल माँग लेने पर ही मिल जाता था पर हिन्दुस्तानियों को उन्हें प्राप्त करने के लिए बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। इसके सिवा एक शिक्षा की परीक्षा लेने का कानून बन गया जिसके अनुसार प्रत्येक प्रवासी भारतीय को किसी भी एक यूरोपियन भाषा की परीक्षा पास होकर पास करनी पड़ती थी। उस समय से तीन वर्ष पहले से रहनेवालों को ही इस परीक्षा से मुक्ति मिली थी। इसके अतिरिक्त जभी १९०६ ई० के एशियाटिक रजिस्ट्रेशन बिल के विरुद्ध आन्दोलन चल ही रहा था कि ट्रान्सवाल में प्रवासियों के रजिस्ट्रेशन का कानून भी १९०७ ई० में पास हो गया जिसके अनुसार किसी भी नवागन्तुक हिन्दुस्तानी के लिये दक्षिण अफ्रीका का दरवाजा बन्द कर दिया गया। भाषा की परीक्षा पास कर लेनेवाले हिन्दुस्तानियों को भी इस प्रतिबन्ध से छूट नहीं मिली।

अन्याय की भीषणता सर लीग ईसेट के शब्दों में और भी सजीव हो उठी थी। वे पहले (१९ ३ में) मद्रास के

प्रधान मन्त्री रह चुके थे। उन्होंने कहा था—"हिंदुस्तानी मजदूर आने के पहले उपनिवेश की स्थिति विपादपूर्ण थी । डरबन का निर्माण पूर्णतः हिन्दुस्तानी बस्ती ने किया।" इस सम्बन्ध में केवल 'कृतघ्न' शब्द का प्रयोग ही उचित प्रतीत होता है।

वहाँ हिन्दुस्तानी निरक्षर, गरीब असंगठित और उपेक्षित दशा में तब तक पड़े रहे और संगठित नहीं हो सके जब तक कि गांधीजी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। कुछ उच्च वर्गों ने इधर उधर की कुछ शिकायतों के विरुद्ध अपनी क्षीण आवाज उठायी थी, पर वह व्यर्थ हो गयी थी। किन्तु उनकी वह आवाज प्रार्थनापत्रों और आवेदनों के अतिरिक्त आगे कुछ नहीं होती थी।

एक वर्ष तक दक्षिण अफ्रीका में ठहरने के बाद गांधीजी १८६४ ई० में फिर हिन्दुस्तान लौटने को हुए। एक दिन संयोगवश वहां के नेटाल मर्करी पत्र के स्तम्भों में यह देखकर वे चिन्तित हुए कि अब वहां की व्यवस्थापिका सभा हिन्दुस्तानियों को मताधिकार से भी वंचित करनेवाली है। जब उन्होंने इस समाचार की ओर अपने मित्रों का ध्यान आकर्षित किया, तो उन्होंने तुरन्त उनसे अनुरोध किया कि वे हिन्दुस्तान न लौटें, क्योंकि वे उनके नेतृत्व में इसके विरुद्ध आन्दोलन करेंगे। गाँधीजी ठहर गये और १८६४ ई० में नेटाल इण्डियन काँग्रेस की स्थापना हो गयी। इससे बड़ा उत्साह बढ़ा और सैकड़ों हिन्दुस्तानी उसके सदस्य बने। आन्दोलन के लिए कितने ही लोगों ने धन दिया। इस बीच जब यह समाचार मिला कि लार्ड रिपन ने हिन्दुस्तानियों को मताधिकार से वंचित करनेवाले कानून को पेश करने की स्वीकृति नहीं दी तो लोगों में कुछ कुछ पूर्ण आश्चर्य हुआ और उत्साह बढ़ा। पर गांधीजी जैसा कि उनकी

रीति थी, केवल आन्दोलन से सन्तुष्ट होनेवाले नहीं थे। वे आन्तरिक सुधार—सफाई आरोग्य-विज्ञान शिक्षा और अधिक उत्तम जीवन बनाने, और दुकान तथा रहने के लिए अलग-अलग इमारतें बनवाने की ओर प्रवृत्त हुए।

१८६४ और १९०६ के बीच गांधीजी हिन्दुस्तान से दक्षिण अफ्रीका आते-जाते रहे, किन्तु वे अपना सारा समय दक्षिण अफ्रीका स्थित हिन्दुस्तानियों की शक्ति संगठित करने में लगाते रहे और इस सिलसिले में भारत में उन्होंने एक प्रबल सज्ञान लोकमत प्राप्त कर लिया। उनकी सच्चाई, सेवा और त्याग ने उन्हें दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों में सर्वप्रिय बना दिया। उनकी सचाई खरेपन और खुले व्यवहार और उनकी परेशानी के समय में विरोधियों की भी सेवा करने की प्रस्तुत भावना ने उन्हें उनके विरोधियों की दृष्टि में भी श्रद्धा भाजन बना दिया। बोअर युद्ध के समय उन्होंने वहाँ की सरकार को युद्ध-मण्डल में जो सहायता दी वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि संकट काल में वे विरोधी की भी सेवा करने के लिए तैयार मिलते थे। जो हो पर इतने दिनों तक दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी हिन्दुस्तानियों की शिकायतें दूर नहीं हुईं।

अन्त में 'एशियाटिक लॉ अमेण्डमेण्ट आर्डिनेन्स' नाम का एक और कानून बना। गान्धीजी ने उसे पहले ट्रान्सवाल गवर्नमेण्ट गजट के विशेष संस्करण में पढ़ा जो २२ अगस्त १९०६ ई० को प्रकाशित हुआ था। उसके बारे में श्री जोसेफ जे० डोक ने निम्नलिखित बातें लिखी थीं—

'कोई अठारह महीने से (दक्षिण अफ्रीका स्थित) एशियाई लोग, जो सारे ट्रांसवाल में लगभग दस हजार होंगे और जिनकी प्रकृति स्वाभाविकतया एकान्त और कानून को माननेवाली रही है, सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं। 'एशियाटिक लॉ अमेण्ड

मेण्ट ऐक्ट' से, जिसका आधारभूत सिद्धान्त यह था कि एशियाइयों ने 'परमिट्स' के बारे में धोखा-धड़ी से काम लेना शुरू कर दिया है इसलिए वह एक जरायम-पेशा जाति है और उसके विरुद्ध कानून बनाया जाना चाहिए, इन लोगों में गहरा क्षोभ फैल रहा है। वे अपने गैर-कानूनी कार्यों के प्रमाण के लिए चिल्लाते रहे हैं, पर उन्हें वह प्रमाण देने से इन्कार कर दिया गया। उन्होंने अपील की कि उनके विरुद्ध लगाये गये अभियोगों की जाँच सुप्रीम कोर्ट के जज से करायी जाय। उन्हें पार्लियामेण्टरी मत (वोट) नहीं प्राप्त थे और पार्लियामेण्ट में उनका कोई प्रतिनिधि नहीं था, इसलिए अब जरायम-पेशा लोगों का बाहरी चिह्न रजिस्ट्रेशन के रूप में दस—उँगलियों के निशान देने या कानून का विरोध करने के सिवा उनके लिए और कोई रास्ता नहीं रहा। उन्होंने प्रतिरोध का ही मार्ग निर्धारित किया। सौभाग्यवश उनका नेता एक सुसंस्कृत साम्य और साहसी व्यक्ति था और टॉलसटाय का शिष्य था इसलिए उनके प्रतिरोध ने निष्क्रिय प्रतिरोध का रूप धारण किया। मैंने कहा उससे कहा —'मेरे दोस्त यह एक बड़ा संघर्ष बनने जा रहा है—इंग्लैण्ड को तो परवाह नहीं है और यहाँ की सरकार लोहे के समान कठोर है। उसने जवाब दिया—'कोई हर्ज नहीं—यदि परीक्षण लम्बा हुआ तो मेरे लोग उससे विरुद्ध हो जायँगे और हमारी विजय अवश्य होगी।

विधान के इस मसविदे पर टीका-टिप्पणी करते हुए गाँधीजी ने कहा—"मैंने ऐसा विधान कहीं नहीं देखा जो किसी भी देश के स्वतंत्र व्यक्तियों के विरुद्ध निर्मित किया गया हो। कुछ कठोर विधान हिन्दुस्तान की नामधारी जरायम पेशा जातियों के विरुद्ध बने हैं जिनके साथ इस आर्डिनेन्स की तुलना आसानी से की जा सकती है। कानून के अनुसार अँगूठे के निशान

केवल अरायम-मेरा बालोंके लिये आते हैं इसलिए मैं वे गलियों के निशान अनिवार्य रूप में लगाने की बात से दुःखी हुआ हूँ।"

गहरे विचार और उत्तेजनापूर्ण वाद-विवाद के बाद हिन्दुस्तानी समाज ने अपने तीन हजार प्रतिनिधियों की भारी सभा में, जो जोहान्सबर्ग में ११ सितम्बर १९०६ ई० में हुई थी, यह फैसला किया कि इस अपमानजनक आर्डिनेन्स का प्रतिरोध किया जाय। प्रत्येक प्रतिनिधि (डेलीगेट) ने यह शपथ ली कि चाहे जो हो जाय वह इस कानून का विरोध करेगा। गाँधीजी ने घोषणा की—"जब तक मुट्ठी भर आदमी भी हमारे लोगों के प्रति सच्चे बने रहेंगे तब तक संघर्ष का केवल एक ही अन्त हो सकता है और वह है हमारी विजय।"

इस प्रकार उस आन्दोलन का जन्म हुआ जो 'सत्याग्रह' नाम से विख्यात हुआ।

लोगों का 'सत्याग्रह'-आन्दोलन आरम्भ करने का उपक्रम देख के पहले यह बात ध्यान देने-योग्य है कि गाँधीजी अन्य सभी शान्तिपूर्ण उपायों को समाप्त कर चुके थे। वास्तविक प्रतिरोध के पहले सामान्य प्रार्थनापत्र, शिष्टमण्डल मुलाकात और पत्र-व्यवहार भुगत चुके थे। किन्तु औपनिवेशिक सचिव मि० एल्गिन ने उन्हें निश्चित रूप में बता दिया कि सरकार आर्डिनेन्स को दक्षिण अफ्रिका-प्रवासी यूरोपियनों के अस्तित्व के लिए आवश्यक समझती है।

इस प्रकार सारी तैयारी पूरी हो गयी। सत्याग्रह ने रजिस्ट्री कराने वें गलियों का निशान देने और 'परमिट' न लेने आदि का रूप धारण कर लिया। सत्याग्रही कानून न मानने के परिणामों को भोगने के लिए तैयार हो गये।

नये आर्डिनेन्स के अनुसार १ जुलाई १९०७ ई० को सरकार का 'परमिट' आफिस खुल गया। गाँधीजी ने उन आफिसों

पर शान्तिपूर्ण धरना देने की व्यवस्था कर ली। बारह-बारह वर्ष के लड़कों ने अपने नाम धरना देनेवालों में लिखाये। यद्यपि कुल पाँच सौ के लगभग लोगों ने अपने नाम रजिस्टर्ड करा कर 'परमिट' ले लिये पर गवर्नमेण्ट इससे आगे नहीं बढ़ सकी और उसने प्रतिरोधियों के संगठनकर्त्ताओं को और प्रतिरोधियों को गिरफ्तार कर लेने का निश्चय कर लिया।

सङ्कट-काल दिसम्बर १९०७ में आया जब हिन्दुस्तानियों के प्रमुख नेताओं के नाम सूचना भेजी गयी कि वे अदालत के सामने हाजिर होकर इस का कारण बतायें कि उन्होंने अपने नाम की रजिस्टरी क्यों नहीं करायी है। बहुतों को—जिनमें गाँधीजी भी थे—विभिन्न अवधि की सजाएं हुई। किन्तु ३० जनवरी १९०८ को जनरल स्मटस ने कुछ वादे कर लिये और किसी समझौते के फलस्वरूप गाँधीजी कुछ और महत्वपूर्ण कार्यकर्त्ताओं के साथ छोड़ दिये गये। जनरल स्मट्स ने आर्डिनेन्स रद कर देने का वचन दिया था और रजिस्ट्री को भी स्वाय-युक्त बना देने का वादा किया, पर इसके लिए उन्होंने हिन्दुस्तानियों पर यह शर्त लगायी कि स्वेच्छा से ही अपनी-अपनी उँगलियों के निशान सरकारी रजिस्टरों में दे दें। हिन्दुस्तानियों ने तो अपना काम कर दिया। नेताओं ने अपने ऊपर अनुयायियों-द्वारा सन्देह किये जाने की जोखिम उठाकर भी यह काम किया पर जनरल स्मट्स ने समझौते सम्बन्धी अपना वादा पूरा नहीं किया और उन सभी वचनों का भंग कर दिया जो उन्होंने पहले कहे थे। आर्डिनेन्स रद नहीं किया गया। उन्होंने गाँधीजी के पत्रों के सन्तोषजनक उत्तर तक नहीं दिये। दूसरी ओर एक और बिल प्रभावपूर्ण ढंग से पेश किया गया जिसके अनुसार भारत के भावी आगन्तुकों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

बाद में यह बिल पास होकर कानून बन गया।

संघर्ष का फिर जारी होना अनिवार्य हो गया। जोहान्स बर्ग में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों (डेलीगेटों म) की एक सभा १६ जनवरी १६०८ को बुलाई गई जब प्रमाणपत्रों (सर्टीफिकेटों) की होली जलाई गई। उस दिन दो हजार प्रमाण-पत्र अग्निदेव की भेंट किए गये।

इसके पश्चात् लम्बा और कष्टसाध्य संघर्ष आरम्भ हुआ। जुमाने सजायें, सख्त मेहनत और कठोरतायें, परेशानियाँ बहुख्याती बत लगाने और गोलियों की बौछारें प्रतिनिधियों के मार्ग में आई। इंग्लैंड और भारत को जो शिष्टमण्डल भेजे गये वे भी बिलकुल व्यर्थ सिद्ध हुए। १४ मार्च १६१३ को वहाँ के हाइकोर्ट के एक फैसले ने सभी हिन्दुस्तानी शादियों को गैर कानूनी करार दे दिया क्योंकि वह दक्षिण अफ्रीका के स्थानीय कानून के अनुसार जायज नहीं होती थीं। यह फैसला भारतीय स्त्रियों के विरुद्ध एक दुष्टतापूर्ण अपमानजनक था। उनको मानों डंक मार दिया गया और वे सब शीघ्रतापूर्वक आन्दोलन में सम्मिलित हो गईं। जो भी स्त्री-पुरुष गांधीजी के फिनिक्स स्थित फार्मीक्स आश्रम में थे वे सोलह-सोलह व्यक्तियों की टोलियाँ बनाकर ट्रान्सवाल की सीमा पार करने को चल पड़े। इन सभी को गिरफ्तार करके सजायें दे दी गयीं। कुछ तामिल-भाषी महिलायें जो नहीं गिरफ्तार की गयीं वे खानों के क्षेत्र में गयीं और उन्होंने वहाँ के हिन्दुस्तानी मजदूरों को ३ पौंड के पोल-टैक्स के अन्याय का विरोध करने के लिए उभारा। इस आन्दोलन के फलस्वरूप २०३७ पुरुषों १२७ स्त्रियों और ५७ बच्चों की एक महान् यात्रा आरम्भ हुई जिसने ६ नवम्बर १६१३ को ट्रान्सवाल की सीमा पार की। इसके बाद गाँधीजी, पोलक तथा अन्य नेता गिरफ्तार किए गए। उन्हें वहाँ की

सरकार ने ट्रान्सवाल के 'आक्रमणकारी' कहकर सामूहिक रूप में गिरफ्तार करके मजदूरी दे दी और उन्हें खानों में काम करने के लिए बाध्य किया गया। इस बीच हिन्दुस्तानी मजदूरों की हड़ताल एक स्थान से दूसरे और दूसरे से तीसरे में फैलकर व्यापक बन गयी। सत्याग्रहियों की कठिनाइयों का कोई पार न रहा।

अन्त में दक्षिण अमीका की यूनियन सरकार की स्थिति असह्य हो गयी और उसने एक कमीशन नियुक्त करके उसके द्वारा हिन्दुस्तानियों का कष्ट दूर करने की घोषणा की। अन्त में मिस्सेएट शीन के शब्दों में "जनरल स्मट्स ने भी वही किया जो गाँधीजी का विरोध करनेवाली प्रत्येक सरकार को करना पड़ा—उन्हें चुटने टेक दिए।" गाँधीजी, कालेनबक और पोलक को १८ दिसम्बर १९१३ को छोड़ दिया गया। अगले कुछ ही दिनों में अन्य कैदियों को भी छोड़ दिया गया। जुलाई १९१४ के अन्त तक भारतीय कष्टनिवारक (इण्डियन रिलीफ) बिल पास हो गया जिसके अनुसार ३ पौण्ड का कर रद्द कर दिया गया हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक विवाहों को जायज करार दे दिया गया (केवल एक पत्नी करना कानूनी दृष्टि से वैध माना गया) और बसायट के प्रमाण-पत्र को ही नागरिकता का निर्णायक प्रमाण मान लिया गया।

इस प्रकार उस बड़े संघर्ष का अन्त हुआ जो आठ वर्ष (१९०६ से १९१४) तक चलता रहा था और जिसने सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए संघर्ष के क्रान्तिकारी ढंग द्वारा एक अभिनव इतिहास का निर्माण कर दिया।

यह कहानी यद्यपि बहुत संक्षिप्त रूप में दी गयी है फिर भी सत्याग्रहियों के साहस का जिक्र किए बिना इसकी पूर्ति न होगी। गाँधीजी का कहना है कि सत्याग्रही जो भी कदम

पड़ता है उसमें वह इस बात का ख्याल रखता है कि विरोधी की स्थिति क्या है। विरोधी की कठिनाई को सत्याग्रही अपने लिए सुअवसर नहीं बनाता और विरोधी के कठिनाइयों में पड़ जाने पर सत्याग्रही अपना काम छोड़कर भी उसकी सहायता करेगा। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रहियों ने इसी धारणा के अनुसार काम किया। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

जब मार्कोस्ट के मजदूरों ने हड़ताल की तो माउन्ट एज काम्बे के गन्ने के खेतवालों को बड़ा नुकसान पहुँचा, क्योंकि जो गन्ना खेतों में कट चुका था उसे अब तक मिलों तक पहुँचा न दिया जाय तब तक तो उसका कोई उपयोग ही नहीं था और यह हानि अत्यधिक थी। ऐसी अवस्था में बारह-सौ हिन्दुस्तानी मजदूरों ने पहले खेतों से कटे गन्ने को मिलों में पहुँचाकर उसके पेलने का काम पूरा कर दिया और उसके बाद हड़ताल की।

एक दूसरे अवसर पर जब डरबन-म्युनिसिपैलिटी के हिन्दुस्तानी नौकरों ने काम छोड़कर हड़ताल कर दी तो सफाई और अस्पताल के विभागों में काम करनेवाले हिन्दुस्तानियों को उनके काम पर वापस भेज दिया गया जिससे शहर में महामारी न फैल जाय और अस्पतालों में पड़े बीमार और भी कष्ट में न पड़ जायँ।

इस प्रकार के उदाहरणों में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य वह अवसर था जब यूनियन रेलवे के यूरोपियन कर्मचारियों ने सामूहिक हड़ताल कर दी थी। उस समय दक्षिण अफ्रीका की यूनियन सरकार सचमुच परेशानी में थी। गाँधीजी को कुछ लोगों ने यह राय दी कि वे उस हड़ताल में हिन्दुस्तानियों को भी सम्मिलित कर दें तो सरकार को घुटने टेक कर तुरन्त फैसला करना पड़ेगा। किन्तु गाँधीजी ने ऐसा करने से इन्कार

कर दिया। उन्होंने कहा कि ऐसा करना सत्याग्रह की प्रवृत्ति के विरुद्ध होगा। गाँधीजी के इस फैसले की कद्र बहुत व्यापक रूप में हुई और जनरल स्मट्स के एक मंत्री ने गाँधीजी से कहा—"मुझे आपके आदमी—हिन्दुस्तानी पसन्द नहीं हैं और उन्हें सहायता देने का मुझे बिलकुल पर्वाह नहीं है पर मैं क्या कर सकता हूँ ? आप समय समय पर हमारी सहायता करते हैं। मैं प्राय चाहता हूँ कि अंग्रेज हड़तालियों की तरह आप भी हिंसा करें, क्योंकि तब तो हम आपसे निपट लेने की तरकीब फौरन निकाल लेते हैं। किन्तु आप तो दुश्मन को भी नुक्सान नहीं पहुँचाते। आप तो केवल कष्ट-सहन के ही द्वारा विजय की आकांक्षा रखते हैं और अपने सौजन्य और वीरता की स्वयं-गृहीत मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते। यही कारण है कि हम आपके विरुद्ध कुछ करने में बिलकुल असहाय हो जाते हैं।

विरोधी पर सत्याग्रह के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का इससे सुन्दर वर्णन नहीं मिल सकता।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह से यह भी प्रकट हो जाता है कि केवल निष्क्रिय प्रतिरोध—जो वास्तव में दुर्बल का हथियार है—और वास्तविक सत्याग्रह में महत्त्वपूर्ण अन्तर है। यह विरोधी के प्रति भी प्रेम रखते हुए सत्य का अस्खलित अनुसरण करने से और आन्तरिक शक्ति से उत्पन्न होता है। इस मामले में गाँधीजी ने यह आग्रह किया कि सत्य और न्याय उनके पक्ष में है और वह उसकी स्थापना किसी के प्रति भी दुर्भावना किए बिना और कष्ट सहन द्वारा करेंगे।

भारतीय आन्दोलन में पशु-बल के लिए कोई स्थान नहीं है। सत्याग्रहियों को चाहे जितना कष्ट उठाना पड़ा हो फिर भी उन्होंने कभी शारीरिक बल का प्रयोग नहीं किया और न उसे

कभी अपने मन में स्थान दिया यद्यपि ऐसे अवसर आए थे जब वे उसका उपयोग प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकते थे। सत्याग्रह विशुद्ध आत्मबल है। जिस प्रकार निष्क्रिय प्रतिरोध में प्रेम के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं है, वैसे ही सत्याग्रह में घृणा के लिए कोई स्थान बिलकुल ही नहीं है। साथ ही शस्त्रों के प्रयोग के साथ साथ निष्क्रिय प्रतिरोध चल सकता है, किन्तु सत्याग्रह में हिंसा तो कभी किसी भी रूप में स्थान की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सत्याग्रही विरोधी को कष्ट में पहुँचाकर स्वयं स्वयं अपने शरीर पर मेल लेता है तो यह यह मानकर ही ऐसा करता है कि विरोधी की विजय किस में है।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की कहानी केवल एक सैद्धान्तिक मूल्य नहीं—कुछ और भी है और वह अपरिमित ऐतिहासिक दिलचस्पी की चीज है। आज भी सारे संसार में स्त्री-पुरुषों के विशाल समूह उसी प्रकार की अवस्थाओं के कष्ट भोग रहे हैं जैसी दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों ने भोगे हैं और वे भी वैसी ही बुरी स्थिति में हैं जिसमें हिन्दुस्तानी थे। सम्भवतः उनके पास उसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है जिसे गाँधीजी ने निकाला और कार्यान्वित किया था। मिट्टी के पुतले-जैसे निरास्त्र और असहाय, पिछड़े हुए और अनजान संगठन और अनुशासन से विहीन और विभिन्न प्रकार के हिन्दुस्तानियों को इस सत्याग्रह अस्त्र ने महावीर बना दिया। अपनी 'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह' पुस्तक (पृष्ठ १४७) में गाँधीजी कहते हैं—"इस पुस्तक के लिखने में मेरा उद्देश्य यही है कि राष्ट्र इस बात को जान ले कि मैं जिस सत्याग्रह के लिए जीवित हूँ, जिसके लिए मैं जीवित रहने की आकांक्षा रखता हूँ और जिसके लिए मेरा विश्वास है कि मैं मरने के लिए भी समान रूप से तैयार हूँ, उसका श्रीगणेश कैसे हुआ

और सामूहिक रूप में उसको किस प्रकार अमल में लाया गया—और इसे जानकर वह इसे उस हद तक ले जाय जहाँ तक वह उस पर अमल करने की इच्छा और योग्यता रखता है।

कानून बनाम विवेक

इन दिनों गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में थे। १६०८ ई० में उन्होंने जब रेवरेण्ड डोक को—जिमन उनकी जीवनी उन्हीं दिनों लिखी थी—निम्नलिखित बातें स्वप्नवाणी के समान लिखा दी थीं— 'ट्रान्सवाल का संघर्ष ऐसा नहीं है जिसमें हिन्दुस्तान को कोई दिलचस्पी न हो। यह (अहिंसात्मक प्रतिरोध) एक धीमी गति का उपाय हो सकता है, किन्तु मैं इसे न केवल ट्रान्सवाल की बुराइयों को दूर करने का निश्चित उपाय मानता हूँ, बल्कि यह उन सभी राजनीतिक तथा अन्य उपद्रवों का उपाय है जिससे हमारे देश—भारत के लोग कष्ट पा रहे हैं।" उस समय उन्होंने यह बात मुश्किल से सोची होगी कि नौ वर्ष बाद उन्हें स्वयं ही भारत में उसी प्रकार का सत्याग्रह आरम्भ करना होगा। सफलता की आभा लेकर गाँधीजी १६१५ ई० में स्वदेश लौटे। आरम्भ में उन्होंने कुछ स्थानों की यात्रा की और वे कुछ प्रमुख व्यक्तियों से मिले और १६१७ ई० में उन्हें एक ऐसा अवसर मिला जिसके सिलसिले में उन्हें अपना नया अस्त्र काम में लाने की स्थिति आयी।

यदि दक्षिण अफ्रीका उनके सामूहिक सत्याग्रह के प्रथम प्रयोग का क्षेत्र बना तो बिहार प्रान्त का एक जिला चम्पारन उस नवीन आरम्भ के परीक्षण का भारत-भूमि पर पहला और बहुत

अनुकूल क्षेत्र सिद्ध हुआ। तब से चम्पारन का महत्त्व बढ़ गया और यह एक ऐसा नाम बन गया जो इस देश में सत्याग्रह संघर्ष के दिनों में बड़ा प्रेरणादायी सिद्ध हुआ।

चम्पारन के किसान सीधे-सादे लोग थे। वे बेचारे उस भूमि के कीड़-मात्र थे और नित्य इस अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ मी नहीं जानते थे। गाँधीजी पर उनके निराशाजनक अज्ञान का बड़ा असर पड़ा। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने 'चम्पारन का इतिहास' में १९२१ ई० में लिखा था—"आरम्भ से ही उन्हें विश्वास हो गया था कि किसी भी बाहरी शक्ति के लिए यह सम्भव नहीं है कि उनकी दशा में सुधार कर सके जब तक कि उनकी मानसिक और चारित्रिक स्थिति में प्रगति न हो जाय।"

मुख्य झगड़ा असामियों और निलहे-गोरों के बीच था जिन्होंने जिले की काफी जमीन पर या तो जमींदारों के रूप में कब्जा कर रखा था या पट्टेदार के रूप में। शिकायतें एक सदी से भी पहले से जमा हो रही थीं जिसका मूल कारण वह प्रणाली थी जिसके अन्तर्गत असामियों को अपने खेतों के एक भाग में तो नील अनश्य ही बोनी पड़ती थी फिर चाहे वह उनके लिए लाभदायक हो या नहीं। इसके अतिरिक्त बेगार और करों का भी झगड़ा था जो मध्ययुगीय ढंग का था। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने इस प्रकार के चालीस करों का जिक्र किया है जिन्हें संयुक्त रूप में 'अबवाब' कहा जाता था। उनमें से कुछ तो बड़े ही विलक्षण और पुराने ढंग के थे। उनमें से एक को 'पानी खर्चा' कहा जाता था। ऐसा माना जाता है कि आरम्भ में यह सिंचाई का कर रहा होगा। पर यह कर उस अवस्था में भी लिया जाता था जब सिंचाई के लिए पानी नहीं होता था। किसान को अपने बच्चे की शादी का भी सदा रुपया कर देना पड़ता था जिसे 'मारवाच' कहते थे। जब कभी कोई निलहा (नील बोनेवाला

ज़मींदार या पट्टेदार साहब) हाथी खर्च देना चाहता था अथवा उसे घोड़े या मोटरकार की आवश्यकता होती थी तो असामियों को उसका विशिष्ट कर अलग देना पड़ता था। जिन किसानों के पास तेल के कोल्हू होते थे अथवा जो अनाज बचते या गाय पालते थे उन्हें भी अतिरिक्त कर देना पड़ता था। ये चालीसों प्रकार के कर बिलकुल मनमाने और अनियमित ढंग के थे— और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कानून के विरुद्ध होते हुए भी इन्हें संगीन की नोक के बल पर ज़बर्दस्ती वसूल किया जाता था। जो बात किसी समय फतेहपुर के मजिस्ट्रेट मि० ई० डब्ल्यू० एल० टावर ने बंगाल में नील की खेती के बारे में १८६० ई० में एक कमीशन के सामने कही थी, वह चम्पारन के बारे में भी उतनी ही सच थी। उनका कथन था—"नील लगान की इस प्रणाली को मैं रक्तपात की प्रणाली मानता हूँ।" निःसन्देह प्रत्येक असामी को हर तरह का अबवाब हर साल नहीं चुकाना पड़ता था किन्तु इन करों में कुछ ऐसे थे जिन्हें हर साल वसूल किया जाता था, कुछ तो खास मौकों पर और कुछ कर ऐसे होते थे जो खास-खास असामियों से ही वसूल किये जाते थे। बन्दोबस्त अफसर मि० जे० ए० स्वीनी की राय में 'अबवाब' का पड़ता कानूनी लगान के समान ही पड़ जाता था जिसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक असामी को कानून की दृष्टि से जितना लगान देना उचित होता था उससे दुगना देना पड़ता था।

इन सबसे अधिक अन्याय-पूर्ण थी तिनकठिया-प्रणाली जिसके अनुसार प्रत्येक असामी को पाबन्द होकर हर बीस बिस्वे पीछे तीन (या कभी-कभी पाँच) बिस्वे में नील बोनी पड़ती थी फिर चाहे वह उसके लिए लाभदायक हो या नहीं। माननीय मि० मॉड ने १९१७ ई० में चम्पारन एग्रेरियन बिल पेश करते हुए

इस प्रणाली के बारे में कहा था—"बुराई की जड़ है 'तिनकठिया' प्रणाली जिसके अनुसार रैयत को ठके के तौर पर या भूमि व्यवस्था के रूप में अपनी भूमि के एक भाग में अनिवार्य नील के कारखानों के लिए नील बोनी पड़ती है। उन्होंने यह भी कहा—"इस प्रणाली की जड़ का विनाश तो सरकार ही और वह भी कानून बनाकर कर सकती है।"

इस प्रकार के अन्याय और जुल्मों के बीच ग्रामीणों तक शोषण चलता रहा। दुर्भाग्यवश शासन बसितों की सहायता करने के बदले गन्दगा स्वार्थों का समर्थन करता रहा। १८६ ई० से किसान-किसी प्रकार का आन्दोलन चलता ही रहा है। स्मृतिपत्र और आवेदनपत्र भेजे जाते रहे। कभी-कभी केवल निराशावश बड़े-बड़े हिंसात्मक विवाद् और नील के कारखानों के जलाये जाने आदि की घटनाएँ होती रहीं। बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद ने १६१५ ई० में बिहार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा में एक प्रस्ताव पेश किया कि इस मामले की जाँच करने के लिए कमेटी नियुक्त की जाय। किन्तु बुराई दूर करने के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया।

दिसम्बर १६१६ ई० में कांग्रेस के लखनऊ-अधिवेशन में बिहार के कुछ कार्यकर्त्ताओं ने एक प्रस्ताव पेश किया और उस (अधिवेशन) में भाग लेने के लिए आये हुए लोगों ने गाँधीजी से अनुरोध किया कि वे इस प्रस्ताव पर कुछ बोलें। अपने विशिष्ट ढंग से गाँधीजी ने कहा कि वे इस विषय की जानकारी नहीं रखते इसलिए उस पर तब तक कुछ भी बोलने में असमर्थ हैं जब तक कि उसका ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेते। बिहार के कार्यकर्त्ताओं के बहुत दबाव डालने पर गाँधीजी ने बाद में चम्पारन आने का वादा कर लिया और वे १ अप्रैल १६१७ को सचमुच पटना पहुँच भी गये। पटने से मुजफ्फरपुर होते

हुए चम्पारन जाने के लिए ६ १२ अप्रैल को रवाना हो गये।

असामियों की शिकायतें बहुत पुरानी थीं। १८६० ई० से लगभग लगातार स्थानीय आन्दोलन होते रहे। कुछ ईमानदार अफसरों की जाँच-पड़ताल से सरकार को इतना तो मालूम हो गया कि आन्दोलन में कुछ सार अवश्य है और असामियों को सचमुच बहुत क्षतिग्रस्त होना पड़ता है। करीब-करीब प्रत्येक वैधानिक आन्दोलन कोई कष्ट-निवारण किये बिना समाप्त हो गया। बेचारे असामियों के आगे अन्धेरी दीवार खड़ी थी।

एसी स्थिति में गांधीजी अपनी संघर्ष शैली के साथ घटना स्थल पर पहुँचे। यह दूसरी बात है कि ऐसा कोई मौका नहीं आया जब गांधीजी ने किसानों से कहा हो कि वे लगान देने से इन्कार करके या अन्याय के सामने सिर झुकाने से इन्कार करके सत्याग्रह का श्रीगणेश करें। इस मामले में तो अकेले गांधीजी का ही सत्याग्रह बिहार के दमित किसानों के कष्ट निवारण का द्वार खोल देने के लिए काफी हो गया।

गांधीजी वहाँ खुले मन से व्यक्तिगत जाँच के लिए गये थे और उस व्यक्तिगत परिपूर्ण सच्चा और शुभ रूप में कर लेना चाहते थे। उन्होंने अपनी माँग भी अविकसित रूप में केवल एक ही बात के लिए की और वह यह थी कि सरकार एक निष्पक्ष कमीशन द्वारा सारे मामले की जाँच कराये। वे न केवल सरकारी कर्मचारियों और निलह प्लांटर्स एसो सिएशन के सतत् सम्पर्क में रहे, बल्कि उन्हें अपने इरादों और योजनाओं की सूचना देते रहे। उन्होंने अपनी जाँच के सिल सिले में किसानों और निलहे प्लांटर्स के बीच की गलत फहमी के कारण जानने के लिए उन (सरकारी कर्मचारियों और नील की खेती करानेवाले प्लांटर्स) से भी मदद माँगी?

गांधीजी का यहाँ जाना प्लांटर्स और सरकारी अधिकारियों

को नहीं रुचा। जब उन्हें मालूम हुआ कि गांधीजी चम्पारन आ रहे हैं तो वे घबरा उठे। वास्तव में प्लान्टर्स एसोसियेशन के मन्त्री ने अपने १० अप्रैल १९१७ के पत्र में कह यह सलाह दी कि वे चम्पारन न आयें और यह कि जाँच की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। जब उन्होंने सरकारी अफसरों को अपने इरादों की सूचना दी तो उन्हें मुजफ्फरपुर में उस डिवीजन के रेवेन्यू कमिश्नर ने ११ अप्रैल को बताया कि सरकार की ओर से जाँच हो रही है और उन्हें न केवल कोई मदद इस कार्य में नहीं मिल सकती बल्कि उन्हें शीघ्र ही वहाँ से चले जाना चाहिए। गांधीजी दृढ़ थे और उन्होंने सब को बता दिया कि वे वहाँ जनता के आमन्त्रण पर गये हैं और बिना वास्तविक स्थिति अपनी आँखों से देखे वहाँ से न लौटेंगे। स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के इस लिखित अनुरोध की कि वे वहाँ आकर स्थिति को देखें एक प्रतिलिपि को नत्थी करते हुए गांधीजी ने एक पत्र सरकारी अधिकारियों को भेज दिया जिसमें उन्होंने यह भी लिख दिया कि वे वहाँ सचाई की जाँच करने आये हैं और यही उनका एकमात्र उद्देश्य है।

इस प्रकार एक ओर सत्य शोधक शान्तिप्रिय गांधीजी और दूसरी ओर शोषकों और अत्याचारियों के बीच संघर्ष की तैयारी पूरी हो गयी।

इस बीच प्रान्त के महत्वपूर्ण नेता और कार्यकर्त्ता मुजफ्फरपुर आ पहुँचे। किसान सैकड़ों की संख्या में गाँवों से चलकर वहाँ पहुँच गये। गांधीजी ने अपनी जाँच शुरू कर दी थी। वे मित्र के केस मोतिहारी को होते हुए १५ अप्रैल को चम्पारन के लिए रवाना हुए। उन्होंने अपने साथियों को बताया कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में कैसे अनुभव प्राप्त किये हैं। उन्होंने कहा कि जब एक व्यक्ति को जेल भेज दिया जाता था तो दूसरा

उसका अनुसरण करता था और इस तरह काम आगे बढ़ता रहा। "मैं चाहता हूँ कि यहां भी उसी तरह काम संचालित हो।" उन्होंने बताया। वह किसी भी क्षण गिरफ्तार कर लिये जाने की आशा कर रहे थे।

१५ अप्रैल को गांधीजी और उनके दलबल मोतिहारी पहुँच गये। गांधीजी आसपास के कुछ गांवों में जाना चाहते थे और वे एक गांव मे सचमुच पहुँच भी गये जो मोतिहारी से नौ मील के फासले पर था। पर सहसा पुलिस ने उन्हें बुला भेजा और उन्हें मोतिहारी वापस आना पड़ा। रास्ते में उन्हें जिला मजिस्ट्रेट की सूचना मिली कि वे यहां से चले जायें। मजिस्ट्रेट ने यह सूचना तिरहुत के कमिश्नर के आदेशानुसार दी थी। कमिश्नर का यह आरोप था कि गांधीजी का उद्देश केवल ज्ञानप्राप्ति के लिए सच्ची खोज मात्र करना न होकर आन्दोलन करना प्रतीत होता है। उस आर्डर की शब्दावली इस प्रकार थी— जिले के किसी भी भाग में आपकी उपस्थिति सार्वजनिक शान्ति के लिए खतरनाक हो जायगी और उससे गम्भीर उपद्रव हो सकता है। मैं आपको हुक्म देता हूँ कि आप इस जिले में न रहें। " इसके बाद गांधीजी को फिर आदेश मिला कि वे पहली गाड़ी से ही जिले को छोड़ जायें।

ताजीरात हिन्द की १४४वीं धारा के इस हुक्मनामे के जवाब में गांधीजी ने जिला मजिस्ट्रेट को लिखा कि कमिश्नर ने स्थिति को बिलकुल गलत रूप में समझा है। उन्होंने यह भी लिखा कि 'सार्वजनिक उत्तरदायित्व की भावना से मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूँ कि मैं आपको बता दूं कि मैं जिला छोड़ जाने की स्थिति में नहीं हूँ, पर यदि अधिकारी चाहें तो मैं उनकी अवज्ञा का दण्ड भोगने के लिए तैयार हूँ। मेरी इच्छा शुद्ध केवल यही है कि मैं सच्ची जानकारी प्राप्त करूं और इसका

प्रशासन में तब तक रहेगा रहेंगे जब तक स्वतन्त्र रहेंगे।"

"इसके बाद उन्होंने अपने साथियों से परामर्श किया और उन्हें बताया कि यदि वह आवश्यक हुआ तो उन्हें भी उनका अनुसरण करते हुए जेल जाने के लिए तैयार रहना चाहिए। तभी उनका ध्येय निश्चित रूप में सफल होगा। वह किसी भी समय जेल भेजे जा सकते हैं इसलिए लिखित हिदायतें तैयार रखी जानी चाहिए। इस बीच किसानों के बयान लिये जा रहे थे और वह जितने गांवों को जा सकते थे उतने में पहुँच गये। ऐसा करते समय उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट को सूचित कर दिया कि वह कोई बात छिप कर नहीं करना चाहते और वह अच्छा होगा कि उनके दल के साथ-साथ कोई पुलिस अधिकारी भेज दिया जाय।

यह प्रकट था कि मजिस्ट्रेट इस मामले में चुप्पी नहीं लगा सकता था और गाँधीजी के नाम एक समन भेजा गया कि वे १८ अप्रैल को अदालत में हाजिर हों और उन पर लगाये गये हुक्म की अवज्ञा करने के अभियोग का जवाब दें।

इस बीच गाँधीजी ने कितने ही मित्रों को वहाँ का हाल-चाल लिख दिया था। पटने के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को पूरी सूचना दी गयी। गाँधीजी के पास तारों और चिट्ठियों के ढेर लग गये जिनसे यही प्रतीत होता था कि कार्यकर्त्ता इस संघर्ष में गाँधीजी का हाथ बँटाने को तैयार हैं। जब गाँधीजी से उनके साथ काम करनेवाले दो व्यक्तियों ने कहा कि वे गाँधीजी के जेल चले जाने के बाद भी उनका काम जारी रखते हुए आवश्यकता पड़ने पर जेल जाने को तैयार हैं, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने खुश होकर कहा—'अब मैं जान गया कि हमें सफलता मिलेगी।

१८ अप्रैल को गाँधीजी मजिस्ट्रेट के सामने हाजिर हुए।

अदालत के अहाते में गाँववालों की भारी भीड़ जमा थी। उन्होंने अपनी सहज बुद्धि से अपने इस नये नेता को पहचान लिया था। गाँधीजी ने कोई वकील नहीं किया। उन्होंने एक छोटा-सा वक्तव्य पढ़ सुनाया जिसका मुख्य अंश इस प्रकार था—" मैंने ताजीरात हिन्द की १४४ धारा के अनुसार दिये गये आदेश का प्रकटतया उल्लंघन करके गम्भीर कार्यवाही की है। मैंने मानवीय और राष्ट्रीय सेवा करने के उद्देश्य से गाँवों में प्रवेश किया। मैं समस्या का अध्ययन किये बिना (असामियों की) कोई सेवा नहीं कर सकता। मैं महसूस करता हूँ कि अभी तो मैं उनके बीच में रहकर ही उनकी सेवा कर सकता था। इसीलिए मैं स्वेच्छापूर्वक अवकाश न चाहूँगा।

"किसी भी आत्म-प्रतिष्ठावाले आदमी के लिए यह आवश्यक है कि वह विरोध किये बिना अवज्ञा का दण्ड भोग ले। मैंने आदेश की उपेक्षा इसलिए नहीं की है कि मैं विधि विहित अधिकारियों के प्रति कोई अमविश्वास के भाव रखता था, बल्कि ऐसा इसलिए किया है कि हमारे विवेक की—हमारे अस्तित्व के सर्वोच्च विधान की आज्ञा ऐसी ही था।"

मजिस्ट्रेट ने अनिच्छापूर्वक अभियोग लगा दिया और अन्त में उसने गाँधीजी से कहा—"अगर आप अब भी जिला छोड़ दें और फिर न लौटने का वादा करें तो आपके विरुद्ध चलाया गया मामला वापस लिया जा सकता है।" इसके जवाब में गाँधीजी ने कहा—"यह नहीं हो सकता। इस बार की ही बात मैं नहीं कहता, मैं तो जेल से लौटकर भी चम्पारन को अपना घर बनाऊँगा।" मजिस्ट्रेट अवाक् रह गया और उसने घोषणा की कि वह ३ बजे अपना फैसला सुनायेगा पर बाद में उसने कहा कि अब वह तीन दिन बाद अपना निर्णय देगा। मजिस्ट्रेट ने गाँधीजी से अनुरोध किया कि वह इन तीन दिनों के

अन्दर गाँव न जायें। गाँधीजी ने यह बात मान ली। किन्तु किसानों के बयान लिखने का काम गाँधीजी ने जारी रखा। इस बात की बहुत सावधानी की गयी कि केवल सच्चे बयान ही लिये जायें।

किन्तु जिस दिन फैसला सुनाया जानेवाला था उस दिन गाँधीजी के विरुद्ध चलाया गया मुकदमा वापस ले लिया गया।

इस मुकदमे की कार्यवाही और उसमें गाँधीजी की दृढ़ता और वक्तव्य के समाचार न केवल भारत के कोने-कोने में पहुँच गये बल्कि विदेशों तक में पहुँचे। उस समय तक अनेक सार्वजनिक कार्यकर्ता मोतिहारी पहुँच गये थे और उन्होंने गाँधीजी से बातचीत करके यह प्रतिज्ञा की कि वे गिरफ्तारी की जोखों पर भी काम करना जारी रखेंगे। गाँधीजी को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हें विश्वास हो गया कि काम जारी रहेगा। किसान उत्साह से उन्मत्त हो रहे थे और गाँधीजी जहाँ जहाँ गये वहीं उनका शानदार स्वागत हुआ और जुलूस निकला। निलहे प्लाण्टर्स (नील की खेती करनेवाले) पहले ही घबराये हुए थे और वे अपने ढंग से सरकारी कानून बनवाने के फिराक में थे। पर गाँधीजी जहाँ-कहीं भी गये और जो-कुछ भी किया सब खुले रूप में और वे उसकी पूर्व-सूचना प्लाण्टरों और सरकार को बराबर देते रहे। आखिर १० मई को गाँधीजी को बिहार-सरकार के आनरेबल मि० मॉड ने मुलाकात के लिए बुलाया। गाँधीजी ने १२ मई १९१८ को तथ्यों के आधार पर संग्रहीत असामियों के ४ बयानों के साथ एक स्मृतिपत्र भेजा। उस के अन्त में गाँधीजी ने लिखा था—"मेरा विश्वास है कि किसान एक दुःखद गलती के कारण कठोर श्रम कर रहे हैं जिससे उन्हें मुक्त कर देना चाहिए। ऐसा करने के लिए मैंने प्लाण्टर्स की प्रणाली के साथ ऐसी शान्ति से व्यवहार किया

है जैसी कि मेरे लिए सम्भव थी।' बाद में जून महीने में गाँधीजी ने बिहार के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर से मुलाकात की और उसी महीने की १३ तारीख को एक जाँच समिति की घोषणा की गयी जिसके एक सदस्य गाँधीजी भी बनाये गये।

इस जाँच समिति की रिपोर्ट के फलस्वरूप १६१७ ई० का 'चम्पारन अग्रेरियन बिल' बिहार व्यवस्थापिका सभा में पेश होकर पास हो गया।

किन्तु गाँधीजी केवल आर्थिक और राजनीतिक शिकायतें दूर कर देने से ही सन्तुष्ट नहीं हो गये। वह किसानों की सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी प्रगति खास तौर पर चाहते थे। गाँधीजी के सत्याग्रह—तत्त्वज्ञान एवं प्रणाली का एक मुख्य अंग सदा रचनात्मक क्रियाशीलतायें रही हैं। अब इन्हें संयुक्त रूप से 'रचनात्मक कार्यक्रम' का नाम दे दिया गया है। उन्होंने अनेक गांवों में पाठशालायें खोलीं और उनके द्वारा किसानों में शिक्षा और स्वस्थ जीवन के सिद्धान्त की शिक्षा दी। वह जानते थे कि केवल वही लोग जो सेवाभाव से प्रेरित होंगे,उनके लिए सहायक सिद्ध हो सकते हैं। कैसे स्वेच्छासेवक गाँधीजी चाहते थे, इसका बयान करते हुए उन्होंने लिखा है—"हम (स्वयंसेवकों) का काम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी होगा और स्थायी भी और इसलिए यह हमारे ध्येय की अन्तिम व्यावश्यक स्थिति होगी। व प्रौढ़ विश्वस्त कठिन कार्य करनेवाले लोग होने चाहियें जो फावड़ा लेकर गाँव की सड़कें बनाने में और गाँवों की सफाई करने में मदद दिखा कि जाय। इसके अतिरिक्त वे जमींदारों से व्यवहार करना भी जानें और रैयत का ठीक पथ प्रदर्शन करें। इस गुण के लिए छः महीने का शिक्षण (ट्रेनिंग) रैयत के लिए अगणित रूप में लाभदायक होगा और कार्यकर्त्ताओं तथा विस्तृत देश के लिए भी।"

गाँधीजी के इस संघर्ष से एक ओर जहाँ निलहे प्लाण्टरों के अत्याचार का मूल बोझ किसानों पर से सचमुच उठ गया वहाँ दूसरी ओर इस लड़ाई के परिणामस्वरूप लोगों पर जो नैतिक प्रभाव पड़ा वह ध्यान देने योग्य था। गरीब किसानों में इससे नई जान आ गयी और उन्होंने अनुभव किया कि उनके पास भी लड़ने के लिए कोई हथियार है और वह भी अपने अधिकारों के लिए साहसपूर्वक खड़े हो सकते हैं। जो लोग दरख्वास्तियों से पेट दबाये हुए थे और कानाफूसी करते हुए भी डरते थे कि कहीं उन्हें प्लाण्टरों के क्रूर नौकर पंचायत न दें वे अब अत्याचारियों के मुँह पर ही उन पर दोषारोपण करने का साहस करने लगे। १९२२ ई. में ही श्री राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'चम्पारन में सत्याग्रह' में इस प्रकार लिखा था—"इस प्रकार चम्पारन का महान् संघर्ष समाप्त हुआ। महात्मा गाँधी के चम्पारन में ठहरने का जो अच्छा और व्यापक प्रभाव पड़ा उसका अनुमान करना कठिन है। अभी तक वह समय नहीं आया है जब उनकी सफलताओं का इतिहास लिखा जाय। जो बीज उन्होंने चम्पारन में—भारत में बोया था वे अंकुरित हो गये हैं, पर अभी उनका पौधा ही बन पाया है—उसके पूर्ण वृक्ष बनने और फूल फल देने में अभी समय लगेगा किन्तु यदि पौधे की हरियाली देखकर किसी भावी फल की मिठास का कोई अनुमान लगाया जा सकता है तो वह पूर्ण दृढ़तापूर्वक कहना होगा कि निकट-भविष्य में ही नया जीवन नये विचार, नयी अभिलाषायें और नवयुग का प्रभाव आ रहा है। भारतीय स्वराज्य का बीज सचमुच चम्पारन में बोया गया है और वहाँ के गरीब असहाय और पददलित असामियों ने जो स्वतंत्रता उन शिक्षित अविश्वासवान और अनुदार प्लाण्टरों के विरुद्ध प्राप्त की है जो शक्तिशाली सरकार के संरक्षण में

रहते थे, यह सदियों से पद-दलित भारतीयों की स्वतन्त्रता का पूर्व-लक्षण है। यह स्वतन्त्रता अब वे अपने इस संघर्ष के द्वारा प्राप्त करके रहेंगे। भगवान् वह दिन शीघ्र लाये।"

मजदूरों की विजय

दूसरा नाटक गांधीजी के अपने ही प्रान्त गुजरात में खेला गया। उन्होंने सूती कपड़े के निर्माण-केन्द्र अहमदाबाद को पहले ही अपना घर बना लिया था। सब से पहले तो उन्होंने अहमदाबाद नगर से कुछ मील की दूरी पर कोचरब गांव में अपना आश्रम स्थापित किया पर बाद में वे साबरमती नदी के किनारे अपना डेरा उठा लाये। यह (साबरमती आश्रम) अहमदाबाद नगर से बहुत निकट और सूती मिलों के क्षेत्र से मिला हुआ है। गांधीजी के लिए यहां सब से बड़ा आकर्षण यह था कि साबरमती सेण्ट्रल जेल इस आश्रम के पास ही है। वे इस सम्बन्ध में लिखते हैं—"चूंकि जेल जाना तो सत्याग्रही के लिए एक सामान्य और मानी हुई बात थी इसलिए मुझे यह जगह पसन्द आ गयी।'

अहमदाबाद के मिल-मालिकों और मजदूरों के बीच एक बड़ा झगड़ा शुरू हो गया था। गांधीजी की स्थिति बड़ी नाजुक थी क्योंकि बहुत से मिल-मालिकों से उनकी घनिष्ठता थी। किन्तु इस मामले में स्वयं मिल-मालिकों के नेता की बहन ने मजदूरों का पक्ष लिया था।

यद्यपि झगड़ा एक बोनस के सवाल को लेकर शुरू हुआ था, पर अन्त में वह महँगाई के भत्ते के प्रतिशतक पर आ गया। जब

दोनों ही दल (मिल-मालिक और मजदूर) गांधीजी के पास फैसला कराने गये तो उन्हों (गांधीजी) ने सारे मामले का अध्ययन किया और दोनों दलों को पंचायत का फैसला मान लेने के लिए राजी कर लिया। इस तरह निर्णय तो हो गया पर दुर्भाग्यवश कुछ ही दिनों बाद कुछ मजदूरों को गलतफहमी हो गयी और उन्होंने फिर हड़ताल कर दी। इससे मिल-मालिकों को क्रोध आ गया जो समझौते से छुटकारा पाने के लिए किसी-न-किसी बहाने की खोज में थे। उन्होंने २२ फरवरी १९१८ को अपनी मिलों को ताला लगा देने की घोषणा कर दी। गांधी जी ने मिल-मालिकों और मजदूरों को समझाया पर उसका कोई परिणाम नहीं निकला। गांधीजी ने देखा कि कुल मिलाकर मजदूरों का पक्ष न्याय की ओर है। जब मिलों को सचमुच ताला लगा दिया गया तो गांधीजी ने मजदूरों को सलाह दी कि वे अलाउन्स में ३५ प्रतिशत बढ़ाये जाने की मांग करें *क्योंकि उनके विचार से यही प्रतिशतक उचित था।* किन्तु मिल-मालिकों ने निश्चय किया कि वे २० प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ायेंगे। इस पर २६ फरवरी से नियमित हड़ताल शुरू हो गयी जिसमें हजारों मजदूर सम्मिलित हुए।

इसमें सन्देह नहीं कि गांधीजी ने मजदूरों को हड़ताल करने की सलाह दी थी। किन्तु ऐसा करने के पहले उन्होंने मजदूरों को सफल बनाने की ये शर्तें भी समझा दी थीं कि वे कभी हिंसा का आश्रय न लें, साथ न देनेवालों को मारें-पीटें नहीं, दान या आर्थिक सहायता पर निर्भर न करें और कैसी भी स्थिति आने पर दृढ़ बने रहें। हड़ताल के दिनों में अपना रोटी-पानी का खर्च चलाने के लिए वे कोई भी मजदूरी या काम-धन्धा करने का प्रयत्न ईमानदारी से करें।

मजदूरों ने यह सामान्य शपथ ली थी कि जब तक उन्हें

जुलाई की तनख्वाह से ३५ प्रतिशत और नहीं मिले तब तक वे काम पर न लौटेंगे। जितने दिन मिल बन्द रहेंगी वे कोई उपद्रव नहीं करेंगे और पूर्णत अहिंसा का पालन करेंगे। वे कोई मार पीट या लूट-पाट नहीं करेंगे। वे मिल-मालिकों की सम्पत्ति को हानि नहीं पहुंचायेंगे। वे गन्दे शब्द मुँह से न निकालेंगे और पूर्णत शान्ति कायम रखेंगे।

हड़ताल के दिनों में गांधीजी और उनके साथ काम करनेवाले व्यस्त रहे। वे मजदूरों के रहने के स्थान देखने गये और उन्हें सफाई और स्वास्थ्य के बारे में हिदायतें दीं, उन्हें औषधि सम्बन्धी सहायता और अन्य प्रकार की मदद भी दी। प्रतिदिन उन्हें समझाने के लिए बुलेटिन निकालकर बांटे जाते थे। प्रतिदिन सभायें की जाती थीं जिनमें नयी समस्यायें सुलझायी जाती थीं।

आर्थिक सहायता के बारे में गांधीजी बहुत कठोर थे। उनका विश्वास उस संघर्ष में नहीं था जो धन के बल पर चलाये जाते हैं। उन्होंने प्रत्येक मजदूर को आदेश किया कि वह अपनी आजीविका भर को कोई काम करके स्वयं कमा ले। कुछ मजदूरों को अस्थायी तौर पर आश्रम के निर्माण-कार्य में लगा लिया गया जो उन दिनों बन ही रहा था। साथ ही गांधी जी मजदूरों को प्रतिदिन आश्वासन देते थे कि यदि भूखों मरने की नौबत आयगी तो वे (गांधीजी) ही पहले मरेंगे मजदूर नहीं।

मजदूरों का नैतिक बल एक पखवाड़े तक बड़ा ही शानदार बना रहा। इस बीच कुछ मिल-मालिक चालबाजी से काम लेने लगे। बहुत-सी अफवाहें उड़ायी गयीं और मजदूर संशय में पड़ कर अपने नैतिक बल से विचलित होते प्रतीत हुए। ऐसे समय पर गांधीजी ने सहसा एक ऐसा निर्णय किया जो एकदम प्रभावशाली और मौलिक था। उन्होंने कहा कि जब तक ऐसी

(अवांछनीय) बातें बन्द न होंगी तब तक वे न तो भोजन करेंगे और न मोटर पर बैठेंगे।

उनके शब्द इस प्रकार थे—"पाँच-दस हजार स्फूर्ति और दृढ़तायुक्त वेतनधारी मुसलमानों के बदले मैं केवल एक-दो हजार मजदूर रखूं जिनके बाहर निम्न और हवोत्साह थे।... मैं उनमें से हूं जिनका यह विश्वास होता है कि कैसी भी परिस्थिति आ जाने पर अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना चाहिए। मैं एक क्षण के लिए भी यह विचार सहन नहीं कर सकता कि आपने जो प्रतिज्ञा की है उसे भंग करें। जब तक कि आप सब को ३५ फी सदी की बढ़ोतरी नहीं मिल जाती या आप अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल नहीं हो जाते मैं खाने को हाथ न लगाऊंगा न मोटर में बैठूंगा।"

यह अनशन केवल तीन दिन चला। इससे सम्पूर्ण बदल गया। मजदूर फिर दृढ़ हो गए। अनशन का अप्रत्यक्ष प्रभाव मिल-मालिकों पर पड़ा और गाँधीजी ने यह कहा कि उस हद तक उसमें दबाव का अंश भी था। किन्तु उन्होंने कहा कि वे उससे इसलिये नहीं बच सके कि वे मजदूरों को गिरने से बचाने के लिए और कोई भी उपाय काम में नहीं ला सकते थे।

अन्ततः हड़ताल के इक्कीस दिनों के बाद यह फैसला हुआ कि प्रोफेसर ध्रुव इस झगड़े का निर्णय पंच के रूप में अकेले ही देवें। तीन मास की अवधि के बाद प्रोफेसर ध्रुव ने यह निर्णय दिया कि मिल-मजदूरों को उनकी जुलाई की तनख्वाह से ३५ प्रतिशत बढ़ोतरी मिलनी चाहिए।

इस मामले में गाँधीजी की क्रियात्मक अहिंसा और अहमदाबाद के मिल-मजदूरों के प्रति गाँधीजी का प्रेम ऐसा घनिष्ट था कि उन्होंने उसके लिए अपना जीवन ही संकट में

आश किया। लगभग एक पखवाड़े के संघर्ष के बाद जब उन्होंने अनशन आरम्भ किया और इस प्रकार मजदूरों का साहस अटूट बनाकर समझौते की स्थिति उत्पन्न कर दी तो कुमारी फेरिंग नामक एक डेनिश महिला ने गांधीजी को तार दिया—"महान् प्रेम उस मनुष्य से ऊंचा किसी को नहीं जानता जो अपने आदमियों के लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है।"

संघर्ष के अन्त में गांधीजी ने यह मन्तव्य दिया कि इस (संघर्ष) में घृणा या दुर्भावना के लिए कोई स्थान नहीं था और वे मिल-मालिकों के भी वैसे ही सेवक हैं जैसे मजदूरों के। श्री महादेव देसाई ने इस संघर्ष पर गुजराती में 'धर्मयुद्ध' नामक एक पुस्तिका लिखी थी जिसमें उन्होंने हड़ताल को शुद्धतम साधनों द्वारा परिचालित दृढ़ निश्चय की शक्ति पर आधारित और दोनों पक्षों से कम-से-कम कटुतावाला संघर्ष कहा था। इसका परिणाम भी दोनों पक्षों के लिए लाभप्रद हुआ।

इस प्रकार अहमदाबाद के मजदूरों में शुरू किया गया कार्य वहां के मिल-मजदूर संघ द्वारा अब भी संचालित हो रहा है और मजदूरों की यह संस्था देश की सुदृढ़तम संगठित संस्थाओं में एक है। यह गांधीजी द्वारा निर्धारित मार्ग पर चल रही है।

किसानों का जागरण

जिस समय अहमदाबाद में मजदूरों का संघर्ष चल रहा था, उससे पहले ही गाँधीजी ने गुजरात के खेड़ा जिले में किसानों के हित का कार्य आरम्भ कर दिया था। यह वर्ष उस जिले की रैयत के लिए बहुत खराब था। बरसात बिलकुल नहीं हुई थी, फिर भी सरकार ने किसानों की पुकार नहीं सुनी और लगान की वसूली अगले वर्ष के लिए मुल्तवी तक नहीं की। गाँधीजी किसानों की सहायता के लिए पहुँच गये। वे किसानों से भी वैसे ही सुपरिचित हो गये जिस प्रकार मजदूरों से थे। वह उनकी मातृभाषा में बोल सकते थे और वे उनके प्रति स्वाभाविक रूप में अपनेपन का अनुभव करते थे। इस बात से संघर्ष के समय दोनों (किसानों और गाँधीजी) को सहायता मिली। दूसरा बड़ा लाभ था श्री वल्लभभाई पटेल की प्राप्ति। यदि चम्पारन के संघर्ष में बाबू राजेन्द्रप्रसाद प्रकाश में आये, जो अब भारतीय विधान परिषद् के सभापति हैं तो खेड़ा के संघर्ष ने श्री पटेल को सामने ला उपस्थित किया जो अब सरदार पटेल कहे जाते हैं और भारत के उप-प्रधानमंत्री हैं।

चम्पारन में गाँधीजी को संघर्ष का परिणाम अपेक्षाकृत सरलता से प्राप्त हो गया था। स्वयं किसानों के सत्याग्रह करने की आवश्यकता ही नहीं उत्पन्न हुई, पर खेड़ा में तो वास्तविक

लगान-बन्दी का आन्दोलन कर उस संघर्ष में सभी तरह के त्याग करने की तैयारी करनी पड़ी। यह घटना १६१८ ई० की है।

खेड़ा या 'कैरा' जिला गुजरात प्रान्त में है। वहाँ फसल पैदा नहीं हुई और अर्द्ध अकाल की स्थिति आ गयी। किसान उस वर्ष का लगान देने में असमर्थ हो गए। इस नियम के अनुसार कि केवल चौथाई पैदावार होने पर किसानों को लगान देने से छुटकारा मिल जायगा खेड़ा के किसानों का उस साल का लगान स्थगित हो जाना चाहिए था। इस कष्ट-निवारण की कार्यवाही को उस वर्ष का लगान मुल्तवी कर देना कहते हैं। किन्तु सरकार ने यह वैध सहायता देने से भी इन्कार कर दिया। इस सम्बन्ध में प्रार्थनापत्र आवेदन और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के प्रस्ताव सभी व्यर्थ हो गये।

गाँधीजी घटनास्थल पर पहुँच गये। स्थिति का अध्ययन कर लेने के बाद उन्होंने रियाया को सलाह दी कि वे लगान देना रोक दें। किसानों ने बड़ी तत्परता के साथ इस आदेश का पालन किया और यह शपथ ली कि वे अपनी जमीन कानून के द्वारा जब्त हो जाने देंगे पर लगान न देंगे। जो लोग यह रकम चुका सकने की स्थिति में थे उन्होंने भी अपने अपेक्षाकृत गरीब भाइयों के साथ सहानुभूति करते हुए लगान देने से साफ इन्कार कर दिया।

गाँधीजी ने खेड़ा के किसानों का मामला जनता और सरकार के सामने रखकर न्याय के लिए अपील की। उन्होंने उस जिले में काम करने और उनका साहस बनाये रखने के लिए स्वयं सेवक भर्ती किये। श्री वल्लभभाई पटेल, जो उन दिनों अहमदाबाद में एक प्रतिभावान बैरिस्टर थे, इस संग्राम में सम्मिलित हो गये।

किसानों को नियमित रूप से राजनीतिक शिक्षा देना शुरू

कर दिया गया। उनके अन्दर से सरकारी पदाधिकारियों का भय निकाल दिया गया। उन्हें समझाया गया कि सरकारी पदाधिकारी तो वास्तव में जनता के सेवक हैं और उनका काम किसानों को हुक्म देना नहीं है। इससे किसानों को सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध खड़े होने और डराने-धमकाने की धमकी से न दबने की प्रेरणा मिली। किन्तु किसानों को यह शिक्षा दी गयी थी कि वे गम्भीरतम उत्तेजना मिलने पर भी शान्त और नम्र बने रहें। उन्होंने अपनी सारी जायदाद की कुर्की और जमीन जब्त होने की नोटिस आदि कार्यवाही धैर्यपूर्वक सहन कर ली।

सरकार ने कानून के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का अवसर भी उत्पन्न कर दिया। प्याज का एक खेत कुर्क किया गया। कानून के अनुसार यह जायज नहीं था। ऐसी अवस्था में गाँधीजी ने श्री मोहनलाल पण्ड्या और अपने सात-आठ अनुयायियों को आदेश किया कि वे कुर्क होने के बावजूद भी उस प्याज की फसल को खोद लें। उन्होंने ऐसा ही किया और उन्हें गिरफ्तार करके जेल की सजा दे दी गयी। इससे लोगों का साहस और भी बढ़ा और जेल जाने का सारा भय गायब हो गया।

जब सरकारी अधिकारियों ने देखा कि लोग काबू में नहीं आ रहे हैं तो वे झुकने को तैयार तो हो गये पर खुले तौर पर उन्होंने किसानों के प्रति न तो किसी रियायत की घोषणा निकाली न उनसे सुलह की बातचीत चलायी। उन्होंने ऐसे किसानों पर दबाव डालना बन्द कर दिया जो लगान दे सकने के योग्य नहीं थे। लगान वसूल करनेवालों को इस आशय की एक सरकारी गश्ती चिट्ठी भेज दी गई थी। इससे कुर्की और नोटिस देना बन्द कर दिया गया। इस प्रकार सरकार ने चुपचाप लोगों के इस हक को स्वीकार कर लिया कि जो लगान अदा करने के योग्य नहीं हैं वे न दें।

इस लड़ाई के बाद गाँधीजी ने इस बात का अनुभव किया कि स्वयंसेवकों की भर्ती कर उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे रिआया को सत्याग्रह विज्ञान सिखा सकें। उन्होंने यह भी महसूस किया कि सत्याग्रह का रचनात्मक पहलू अभी तक जनता के लिए काफी आकर्षक नहीं बन पाया है, यद्यपि वह महत्व की चीज या उससे भी बढ़कर है।

सामूहिक सत्याग्रह का पाठ

जनता की क्षमता पर जैसा असर बारडोली-आन्दोलन का पड़ता है उतना और किसी भी सामूहिक आन्दोलन का नहीं। बम्बई प्रान्त का कानून है कि कर न देने के बदले सभी तरह की चल और अचल सम्पत्ति, चौपाये और रहन के मकान भी यदि वे उस भूमिखण्ड में हुए, कुर्क हो सकते हैं और उन्हें जब्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जब सारे क्षेत्र में संघर्ष शुरू होता है तो उसमें पुरुष, स्त्री और बच्चे सभी भाग उठते हैं। उसके सिलसिले में जुर्माने और सजाएं होती हैं और कुछ सरकारी अधिकारी गैर-सरकारी ढंग और साधनों से भी काम लेने लगते हैं, यद्यपि ऐसी बातें कानून की अधिकार सीमा की व्यतिरेक हैं।

बारडोली ने इस प्रकार के सभी कष्ट सहन कर लिये। यह शान्तिपूर्ण संस्था का एक आश्चर्यजनक कार्य था। कुछ समय के लिए तो इस (बारडोली) ताल्लुका में सरकारी हुक्मनामों का खात्मा ही बन्द हो गया। सरकारी अफसरों तक को अपनी रसद (राशन) के लिए किसानों की आज्ञा लेनी पड़ती थी। १६२८ का बारडोली-सत्याग्रह वस्तुतः एक प्रमुख ऐतिहासिक संघर्ष था।

उस आन्दोलन में जो-जो बातें सम्मिलित थीं व उन सारी

अपने इरादे की उपयुक्त सूचना सरकार को दे दी कि यदि वह (सरकार) अपना फैसला न बदलेगी तो वे (किसान) लगान देना बन्द कर देंगे।

तालुका की जनसंख्या लगभग ८८,० थी और नये परिमाण के हिसाब से लगान की मांग लगभग ६ ७,००० रुपये थी। गांधीजी ने परिस्थिति का अध्ययन किया और आन्दोलन की सफलता के लिए आशीर्वाद दिया। किसानों के अनुरोध पर सरदार वल्लभभाई पटेल ने आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया। सरदार ने किसानों में यह दृढ़ इच्छाशक्ति संचारित कर दी कि वे इस संघर्ष को अन्त तक पहुँचा कर छोड़ें। संघर्ष पूरी गम्भीरता के साथ आरम्भ हुआ।

सौभाग्यवश श्री महादेव देसाई ने इस आन्दोलन का पूरा वर्णन अपनी 'बारडोली की कहानी' पुस्तक में दी है। उसके कुछ तथ्य यहां संक्षिप्त रूप में दिये जाते हैं।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने तालुका का संगठन पूर्ण रीति से कर लिया था। कई वर्षों से तालुका के विभिन्न भागों में चार-पांच समाज-सेवा-केन्द्र खुल गये थे जो रचनात्मक क्रियाशीलताओं में लगे थे। उस ढांचे के आधार पर वहां सोलह नये शिविर (कैम्प) सुविधाजनक स्थानों में खोले गये और ७५ स्वयंसेवकों को इनका कार्यभार सौंप दिया गया। इनके विशिष्ट कर्त्तव्य निर्धारित कर दिए गए। तालुका का सारा वातावरण सशस्त्र शिविर (कैम्प) के रूप में बदल गया था। युद्ध त्याग निर्भयता प्रतिरोध हर एक की जबान पर थे। प्रतिदिन समाचार और आदेश के लिए बुलेटिन निकाले जाते थे। किसानों ने यह प्रतिज्ञा की कि वे सभी तरह का अधिक से अधिक नुकसान पूर्णतः अहिंसक रहते हुए सहन करेंगे। बारडोली में एक प्रतिनिधि-परिषद् करके यह कठोर नियम

गया, किन्तु इन विरोधियों को भी मौलिक आवश्यकता की वस्तुओं से वंचित नहीं किया गया।

सारे भारत की सहानुभूति बारडोली के संघर्ष से थी और लोग उनके वीरों को प्रशंसा की दृष्टि से देख रहे थे। इस संघर्ष में स्त्रियों ने पुरुषों से कम काम नहीं किया। व्यवस्थापिका सभा के कितने ही सदस्यों ने सरकार की दमन-नीति के विरोध-स्वरूप इस्तीफे दे दिये। इस मामले पर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट तक में बहस हुई। किसान अहिंसक रूप में बड़ी दृढ़ता के साथ डटे रहे। पाँच-छः महीने के संघर्ष के बाद, सरकार ने घुटने टेक दिये और गवर्नर ने एक जाँच समिति नियुक्त कर दी। जो सम्पत्ति कुर्क कर ली गयी थी वह किसानों को वापस दे दी गयी और जिन ग्राम अधिकारियों ने इस्तीफे दे दिये थे वह अपनी-अपनी जगह पर फिर बहाल कर दिये गये। समिति ने यह पता लगाया कि किसानों की शिकायतें साररूप में सच हैं और लगान २२ प्रतिशत के बदले केवल ६। प्रतिशत अर्थात् रुपये पीछे एक आना बढ़ाया जा सकता है।

इस संघर्ष ने निस्सन्देहरूप में प्रदर्शित कर दिया कि सत्याग्रह अस्त्र कितना कारगर है। रैयत का मामला न्यायपूर्ण तथा आक्रमण के अयोग्य था और उपाय पूर्णतः अहिंसक। इस ऐतिहासिक आन्दोलन के अन्त में श्रीमती सरोजिनी नायडू ने गांधीजी को लिखा था—"आपका (१९२० में) स्वप्न था कि बारडोली को सत्याग्रह का पूर्ण उदाहरण बनाया जाय, और बारडोली ने आपके उस स्वप्न को अपने निजी ढंग से समझा और पूर्ण कर दिया है।"

स्वतन्त्रता के लिए सत्याग्रह

पिछले परिच्छेदों में मैंने शान्तिपूर्ण आन्दोलनों में से कुछ की रूपरेखाएँ प्रस्तुत की हैं। उनमें से कोई भी अखिल भारतीय पैमाने पर नहीं किया गया था यद्यपि सारे देश ने उनमें दिलचस्पी ली थी। अब मैं उन बड़े आन्दोलनों का संक्षिप्त चित्र उपस्थित करता हूँ जिनमें से सभी सारे भारत के मन पर छा गये थे। मैं एक ही परिच्छेद में उन सभी का वर्णन इसलिए कर रहा हूँ कि उन सब में एक प्रकार की एकरूपता है। इस छोटी पुस्तक में इनमें से एक का भी विस्तृत वर्णन नहीं दिया जा सकता। उन आन्दोलनों में से प्रत्येक अब भारत के इतिहास का अंग बन गया है और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए इन सभी ने योग दिया है।

आजादी की लड़ाई एक लगातार चलनेवाली प्रक्रिया थी और जब उसका नेतृत्व १९१९ ई० में गाँधीजी के हाथों में आया तो उन्होंने देश को एक-एक कदम करके आगे बढ़ाया। मैंने यहाँ जिन सत्याग्रह आन्दोलनों का जिक्र किया है उनमें से प्रत्येक अखिल भारतीय व्यापकता लिये हुए था और समुद्र के ज्वार की लहरों की तरह इनमें से प्रत्येक एक दूसरे का अनुसरण करता रहा है। इस प्रकार ये १९१९ से १९४४ तक फैली लम्बी शृंखला की कड़ियाँ मिल हुए हैं। इनमें से प्रत्येक आन्दोलन

जारी रखा गया। इन छः आन्दोलनों में से दो ऐसे थे जिनमें केवल चुने हुए व्यक्ति ही सविनय-अवज्ञा करने के लिए अधिकारी थे। अन्य चारों ही सामूहिक सत्याग्रह थे जिनमें लाखों पुरुष स्त्रियों और बच्चों तक ने भाग लिया और अहिंसा के अनुशासन का पालन कठिन परिस्थितियों में भी किया।

(१) रौलट एक्ट सत्याग्रह १९१९

यह आन्दोलन साररूप में एक ऐसी पुकार थी जो मर्यादा-बद्ध व्यक्तियों ने ऐसे कानूनों का उल्लंघन करने के लिए की थी जो प्रतिकूल और विरक्तिकर थे। उदाहरण के लिए उन दिनों प्रचलित दमनकारी प्रेस-कानून और 'क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट ऐक्ट' (जो ३ मार्च १९१९ को पास हुआ था) जिसे 'रौलट ऐक्ट' भी कहते हैं इसी तरह के कानून थे। सरकार ने जब इस आन्दोलन को जितना ही दबाने का प्रयत्न किया यह उसी अनुपात से सामूहिक रूप में और भी बढ़ता गया और स्थानीय मजिस्ट्रेटों की दी हुई आज्ञाओं को लोगों ने सहस्रों की संख्या में भंग किया।

प्रथम विश्वव्यापी महासमर में प्रभावपूर्ण ढंग से भाग लेने के बाद युद्ध समाप्त हो जाने पर भारत यह आशा कर रहा था कि उसे आजादी की एक उदारतापूर्ण किस्त मिलेगी, किन्तु इसके बदले रौलट बिल आ गया जिसके द्वारा भारतीयों के नागरिक अधिकारों को भी कुचल देने का उपाय किया गया। भारत के राजद्रोही और क्रान्तिकारी जुर्मों पर रौलट की रिपोर्ट १९ जनवरी १९१९ को प्रकाशित हुई थी और रौलट बिल ६ फरवरी को सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में पेश किया गया। २४ फरवरी को गाँधीजी ने यह घोषणा कर दी कि यदि यह बिल कानून के रूप में पास कर दिया गया तो वे सत्याग्रह-आन्दोलन अपने महत्व में चलायेंगे। बिल नं० २

३० मार्च को ही सत्याग्रह दिवस मना लिया गया 'सत्याग्रह दिवस' के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य देते हुए गाँधीजी ने कहा था—'सत्याग्रह मुख्य रूप से एक धार्मिक आन्दोलन है। यह शुद्धि और प्रायश्चित की प्रक्रिया है। यह आत्मयंत्रणाया कष्ट-सहन द्वारा शिकायतें दूर करने या सुधार करने के लिए काम में लाया जाता है। ६ अप्रैल को विनम्रता और प्रार्थना का दिवस मनाना चाहिए।" कार्यक्रम का विवरण इस प्रकार रखा गया था—(१) चौबीस घण्टे का अनशन किया जाय, पर सरकार पर दबाव डालने के लिए भूख-हड़ताल के रूप में नहीं। यह उपवास सत्याग्रही भद्र-अवज्ञा के लिए अपनी सत्पात्रता सिद्ध करने के लिए आवश्यक अनुशासन के रूप में करें। अन्य लोगों के लिए यह (अनशन) इस बात का संकेत होगा कि उनकी भावनाओं को किस गहराई तक आघात लगा है। (२) सत्याग्रह दिवस' को सभी तरह के काम-काज बन्द रखे जायें। (३) सार्वजनिक सभायें करके इस आशय के प्रस्ताव पास किये जायें कि रौलट ऐक्ट वापस ले लिया जाय। यह कार्यक्रम सर्वसाधारण के लिए थे।

प्रतिज्ञाबद्ध सत्याग्रहियों के लिए एक विशेष कार्यक्रम था। उन्हें सत्याग्रह-समिति ने आदेश दिया था कि वे उस कानून का विनम्रतापूर्वक उल्लंघन करें जो जब्त साहित्य और रजिस्टर्ड अखबारों पर लागू होता था। स्वयं गाँधीजी ने एक बिना-रजिस्ट्री कराया हुआ पत्र—'सत्याग्रही' ७ अप्रैल १६१६ को प्रकाशित कर दिया। यह केवल आधे पृष्ठ का पत्र था और इसमें अन्य बातों के अतिरिक्त सत्याग्रहियों के लिए ये आदेश थे कि उन्हें जेल यात्रा, जुर्माना, सम्पत्ति की कुर्की आदि को बिना छुटकारा या बचाव की चेष्टा किए किस प्रकार सहन करना चाहिए।

का काम अब यह होना चाहिए कि वह अधिकारियों को अपने सभी मान्य साधनों द्वारा गैर कानूनी क्रियाशीलताओं को दबाने और शान्ति-स्थापना करने के लिए सहयोग दें। हम निर्भीक होकर *'सत्य'* और *'अहिंसा'* के *सिद्धान्त का प्रसार* करें और तभी हम सामूहिक सत्याग्रह करने के योग्य हो सकते हैं। "

२१ जुलाई १९१९ को गाँधीजी ने एक दूसरा वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने कहा कि सरकार की ओर से शुभेच्छा का चिह्न प्रकट होने और अनेक मित्रों से परामर्श प्राप्त करने के कारण वे सविनय-अवज्ञा आन्दोलन को फिर न जारी करेंगे, क्योंकि उनका उद्देश्य सरकार को परेशान करना नहीं है। उन्होंने सत्याग्रहियों से अनुरोध किया कि वे स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग और हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार करें। फिर भी जिस रौलट ऐक्ट के लिए सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया गया था, उसकी विफलता निश्चित हो गयी। दो बिलों में से एक तो कानून का रूप ही नहीं धारण कर सका, और जो कानून बना वह कभी अमल में नहीं लाया गया। सत्याग्रह संग्राम का ध्येय प्राप्त हो गया।

(२) अहिंसात्मक असहयोग

रौलट ऐक्ट के विरुद्ध अप्रैल १९१९ में सत्याग्रह हुए अभी एक वर्ष मुश्किल से बीता था कि हण्टर कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हो गयी। उसने पंजाब के हत्याकाण्ड से सम्बद्ध सरकारी अफसरों को निर्दोष सिद्ध कर दिया और इस प्रकार जलियाँवाला बाग के भीषण हत्याकाण्ड और पंजाब की अन्य क्रूरताओं के लिए उत्तरदायी अफसरों को दूध के धुले—निष्कलंक बना दिया।

एक दूसरी शिकायत ने जिसका विशेष सम्बन्ध हिन्दुस्तान के

के हाथ से न्याय छीन सकती है यह सत्याग्रह की शक्ति है, चाहे उस सविनय अवज्ञा कहें या असहयोग। गत काल की तरह इस बार भी सत्याग्रह का आरम्भ अनशन और प्रार्थना से होगा, कार-बार बन्द रखे जायेंगे और यह प्रस्ताव पास करने के लिए सभाएँ की जायेंगी कि सन्धि की शर्तों में संशोधन किया जाय और पंजाब के मामले में न्याय किया जाय, और साथ ही यह भी कि जब तक न्याय न किया जायगा तब तक असहयोग को फिर-फिर दुहराया जाता रहेगा। उसी दिन से उपाधियाँ लौटायी जाने लगेंगी। किन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि हम संगठन करें और ऐसी व्यवस्था और अनुशासन विकसित कर लें।"

इसके बाद गांधीजी ने फिर पूर्ण सहयोग की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने जनता को बताया—"मेरा कहना है कि पागलपन का जवाब पागलपन से न देकर विवेक से दीजिए फिर तो परिस्थिति आपके वश में होगा।"

खिलाफत कमेटी ने २८ मई १९२० को ही असहयोग की स्वीकृति दे दी और कांग्रेस के विशेष अधिवेशन ने उसे ४ सितम्बर १९२ को मंजूर कर लिया।

इस आन्दोलन को प्रगतिवादी अहिंसात्मक असहयोग नाम मिला। इसमें पहली बात थी—पचमुखी बहिष्कार जिसमें उपाधियों और प्रतिष्ठाओं का बहिष्कार, व्यवस्थापिका सभाओं के चुनावों का बहिष्कार, स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार, अदालतों और अदालती पंचायतों का बहिष्कार और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार। इस आन्दोलन का एक रचनात्मक पहलू भी था। राष्ट्रीय विद्यालय और संस्थाएं खोलनी थीं पंचायती अदालतें और अदालतें स्थापित होनी थीं चरखे की कताई शुरू करनी थी, फिर सरकारी मजलिसों, दरबारों और सभी सर्द

करने का निश्चय किया जो अहिंसा की प्रतिज्ञा ले सकें। गांधीजी १६२२ के आरम्भ में एक व्यापक करबन्दी आन्दोलन बारडोली में शुरू करना चाहते थे पर जब चौरी-चौरा कांड में २० पुलिस कानिस्टेबलों और एक सब-इन्सपेक्टर को मौत के घाट उतार दिया गया और इसके अतिरिक्त प्रिन्स आफ वेल्स के भारत आने पर दंगे होने लगे, तो गांधीजी ने कांग्रेस कार्यकारिणी समिति को समझा-बुझाकर सामूहिक सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन स्थगित करा दिया और विस्तृत रचनात्मक कार्यक्रम चालू करने का निर्णय कर डाला। १० मार्च को गांधीजी स्वयं गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें राजद्रोहात्मक लेख लिखने के कारण छः साल कैद की सजा दे दी गयी। गांधीजी ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा कि यह तो उनका कर्तव्य है कि वे इस सरकार के प्रति असन्तोष उत्पन्न करनेवाले उपदेश दें, और उन्होंने अदालत से यह भी अनुरोध किया कि वह उन्हें उस अपराध की पूरी-पूरी सजा दें।

यद्यपि १६२०-२२ ई० के आन्दोलन का आसन्न ध्येय प्राप्त नहीं हो सका, पर उससे जो अप्रत्यक्ष लाभ हुए वे बहुमूल्य थे। गांधीजी ने घोषित किया कि इस अवधि में देश यदि अधिक नहीं तो कम-से-कम तीस वर्ष आगे बढ़ गया था। कहते हैं कि उस समय बम्बई के गवर्नर ने यह कहा था कि आन्दोलन सफलता से केवल एक इंच दूर रह गया था।

(३) स्वराज्य के लिए सविनय-अवज्ञा—१६३०-३१

इसके बाद का कदम किसी खास शिकायत को दूर करने के लिये नहीं बल्कि स्वयं स्वराज्य के लिए था। यद्यपि १६२४-२६ तक पांच छः साल कांग्रेस के लिए रचनात्मक कार्यशीलता के थे तो भी यह भावना विशेषकर युवकों में जोर पकड़ती

वह जब ठीक समझे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का कार्यक्रम आरम्भ कर दे जिसमें टैक्स अदा न करना भी सम्मिलित हो। यही १६२९ के सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का विधिवत श्री गणेश था।

कांग्रेस की कार्य-समिति ने निश्चय किया कि २६ जनवरी को सारे देश में स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाय। फरवरी में उसने गांधीजी को अधिकार दिया कि वे जिस प्रकार ठीक समझें सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन आरम्भ कर दें। उसने कहा कि पूर्ण स्वाधीनता के लिए किया जाने वाला यह आन्दोलन आरम्भ कर दिया जाय और वह केवल ऐसे व्यक्तियों के नियन्त्रण में रखा जाय जो अहिंसा को अपने विश्वास का विषय मानते हों।

गांधीजी ने इस संघर्ष का समारम्भ साबरमती से डाण्डी के लिए कूच करके किया। इस कूच का ध्येय था नमक कानून तोड़ना। ० मील की पैदल यात्रा ५ अप्रेल को समाप्त कर ली गयी। ६ अप्रैल को गांधीजी ने बिना टैक्स वाला नमक की एक चुटकी उठाकर उसका कानून तोड़ दिया। इस पर सारे भारत में संघर्ष आरम्भ हो गया। यद्यपि गांधीजी ४ मई को गिरफ्तार कर लिए गये, पर आन्दोलन का नेतृत्व एक के बाद दूसरा संचालक क्रमशः लेता ही गया—एक व्यक्ति जेल जाता तो दूसरा उसके स्थान पर आ डटता। नमक पर छापा मारना शुरू कर दिया गया और सरकार का दमन-कानून अधिकाधिक कठोर होता गया। भारत एक बहुत बड़ा जेल खाना हो गया।

इस आन्दोलन में पुलिस की लाठी खूब काम में आयी और कई नगरों में गोलियाँ भी चली जिससे सिद्ध हो गया कि सरकार बड़ी ही मुस्तैदी के साथ परिस्थिति पर काबू पाने का

समय के लिए हट जाना पड़ता था। इस धावे का एक आश्चर्य जनक रूप था स्वयंसेवकों का अनुशासन। ऐसा प्रतीत होता था कि वे गाँधीजी के अहिंसा-सिद्धान्त से पूर्णतः अनुप्राणित हो चुके हैं।" इस मौके पर बदला लेने और प्रतिहिंसा की एक भी घटना नहीं हुई—यहाँ तक कि मौखिक शाप भी नहीं दिया गया। यह धावा कई दिन तक इसी प्रकार चलता रहा।

लोगों ने आदर्श धैर्य प्रदर्शित किया और अपने-आपको पूर्णतः अहिंसा के मार्ग पर चलाया पर पुलिस और फौज ने घोर क्रूरता और पाशविकतापूर्वक इन हजारों निहत्थों पर आक्रमण किया जो अपने देश के लिए अपना रक्त बहाने को गये थे। बहुत बार तो निरपराध दर्शक भी सैकड़ों की संख्या में बुरी तरह पीटे गये।

सारे वर्ष में अनेक आर्डिनेन्स (काले कानून) लागू किये गये। आये दिन पुलिस लोगों पर लाठी-प्रहार और मारपीट करती थी। अकेले अप्रेल और मई के महीनों में उन्तीस जगहों पर गोलियाँ चलायी गयीं जिनसे १११ व्यक्ति मरे और ४२२ घायल हुए। पर लोग शान्त रहे और अपनी ओर से कोई हिंसा न करके उन्होंने स्वयं कष्ट-सहन कर लिया। इस आन्दोलन में स्त्रियों ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया और अत्यन्त कठोर व्यवहार होने पर भी अटल रहीं।

इस बीच समझौते की बातचीत करने के लिए भी प्रयत्न हुए। यह चर्चा चलानेवाले बीच के लोग थे जिनमें सि स्त्रा कोम्बे सर्वश्री सप्रू, जयकर और मि० होरेस अलेग्जेंडर मुख्य थे। किन्तु इनमें से सभी असफल हुए। भारत में यह सब होने पर भी लन्दन में जो गोलमेज कान्फरेन्स होने जा रही थी उसने गाँधीजी के छुटकारे में शीघ्रता उत्पन्न कर दी। २६ जनवरी १९३१ को गाँधीजी और उनके २६ साथी जेल से बाहर

(४) स्वराज्य के लिए सत्याग्रह—१६३२ ३४

वास्तव में यह आन्दोलन तो १६३० के आन्दोलन का ही एक सम्बद्ध रूप था—हाँ बीच में नौ मास का व्यवधान अवश्य आ गया था जिसमें गाँधीजी लन्दन की गोलमेज परिषद् में भाग लेने चले गये और जिसका कोई सफल परिणाम नहीं निकला।

जिस गाँधी-इर्विन समझौते पर ५ मार्च १६३१ को हस्ताक्षर हुए थे, उसकी स्याही सूखने के पहले ही उसको भंग कर दिया। लार्ड इर्विन की जगह अब लार्ड विलिंगडन भारत के वाइसराय बनकर आ गये थे उन्होंने समझौते का कोई रूप नहीं दिखाया। जब गांधीजी लन्दन की गोलमेज परिषद् से लौटे तो उन्होंने भारत को आर्डिनेंस-राज्य के अन्तर्गत पाया। प्रमुख कांग्रेसी गिरफ्तार किये जा चुके थे। यद्यपि गाँधीजी ने कांग्रेस का दृष्टिकोण वाइसराय को समझाने का प्रयत्न किया, पर वाइसराय उसे स्वीकार करने को तैयार न हुए और सविनय-अवज्ञा आन्दोलन फिर जारी करना पड़ा। गाँधीजी और देश के कोई पन्द्रह हजार प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्त्ता चुन-चुन कर गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें बिना न्यायालय में विचार किये जेल में ठूँस दिया गया। कांग्रेस की सम्पत्ति जब्त करली गयी और कांग्रेस और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ गैर कानूनी घोषित कर दी गयी। आर्डिनेन्स (काले कानून) का शासन चलने लगा जिसमें लाठी और डण्डे विशेष रूप में काम में लाये जाने लगे। शीघ्र ही देश के जेलखाने पूरा भर गये—एक लाख से अधिक लोग उनमें पहुँच गये। दमन नृशंसता के साथ बराबर जारी रहा।

१२ सितम्बर १६३२ को देश ने सहसा यह समाचार सुना कि साम्प्रदायिक समझौते के सिलसिले में गाँधीजी आमरण

प्रतीक्षा करने का गुण अब दुर्गुण के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है। ब्रिटेन को अनेक विकल्प सुझाये गये। भारत को स्वतन्त्र घोषित करने को कहा गया पर ब्रिटेन ने इस सवाल को टाल दिया। यह भी कहा गया कि भारत का एक विधान-परिषद् के द्वारा तैयार किया हुआ विधान प्रदान किया जाय। इस विचार को हँसकर उड़ा दिया गया। यह भी कहा गया कि यदि भारत को स्वतन्त्र मान लिया जाय तो यह युद्ध में ब्रिटेन को पूरा सशस्त्र सहयोग दे सकता है। इसे भी अस्वीकार कर दिया गया। आत्मदमन का अभ्यास उस हद तक तो अच्छा था जब तक कि यह सत्याग्रह कायम रखने में मदद देता रहा पर जब यह नौबत आयी कि यह तो सत्याग्रह का ही समाप्त कर देगा तो फिर यह आत्मदमन दुर्गुण बन गया। गाँधीजी ने कहा—"मैं केवल कांग्रेस की ओर से नहीं बोल रहा हूँ, पर उन सभी की ओर से कह रहा हूँ जो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता—विशुद्ध स्वाधीनता चाहते हैं। यदि मैं अब यह कह दूँ कि ब्रिटेन को परेशान नहीं किया जायगा। .. तो मैं मूर्ख बनूँगा इसलिए यदि मैं आत्मदमन का प्रयोग इस नाजुक मौके पर करता हूँ तो यह आत्मघातक सिद्ध होगा। उन्होंने आगे चलकर कहा—"हम चुपचाप नहीं बैठ सकते। यह सत्याग्रह नहीं है कि हम लोगों को वाणी-स्वातन्त्र्य के अधिकार का उपयोग करने के अपराध में जेल जाने दें। यदि हम इसी तरह बैठे रहे तो कांग्रेस का नाम मिट जायगा और उसके साथ ही राष्ट्रीय जोश भी समाप्त हो जायगा।

व्यक्तिगत सत्याग्रह को गाँधीजी ने असन्तोष प्रकट करने का अत्यन्त उपयुक्त ढंग बताया। कांग्रेस की यह युक्ति थी कि भारत को "अहिंसात्मक ढंग से युद्ध-विरोधी प्रचार सुने रूप में

बाद में गांधीजी ने यह निर्देश किया कि व्याख्यान और वक्तव्य देने के बदले सत्याग्रहियों को यह पुकार लगानी चाहिए कि ब्रिटेन को युद्ध प्रयत्न में धन-जन की सहायता देना गलती है और सभी तरह के युद्धों का प्रतिरोध करने के लिए अहिंसा ही सबसे अच्छा मार्ग है। इस मामले को लेकर करीब तीस हजार व्यक्ति जेल गये। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि कांग्रेस के जो प्रतिनिधि केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों अथवा जिला बोर्ड एवं म्युनिसिपैलिटियों या कांग्रेसी संस्थाओं तथा सार्वजनिक जीवन में थे वे सभी इस संघर्ष में जेल के अन्दर पहुँच गये। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के ११ सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के १७६ सदस्य, २९ भूतपूर्व मंत्री (मिनिस्टर), २२ केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य और ४०० प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य जेल चले गये। यह समाम १९४१ ई० के अन्त तक चलता रहा। जब जापान का भारत पर आक्रमण निकट आ गया तो सरकार ने इन सत्याग्रहियों को इस आशा से छोड़ दिया कि वह इस प्रकार उनसे युद्ध प्रयत्न में सहयोग प्राप्त कर सकेगी।

(६) 'भारत-छोड़ो'--१९४२ ४४

दिसम्बर १९४१ में जापानी वायुयानों ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण करके अमेरिका को भी युद्ध में सम्मिलित होने के लिए बाध्य कर दिया। किन्तु जापानी सैनिकों ने अविश्वासजनक द्रुतगति से प्रशान्त महासागर के टापुओं में प्रसार प्राप्त कर लिया। व बर्मा होकर आगे बढ़ रहे थे और जापानी बम भारत भूमि पर गिर चुका था। ब्रिटेन की प्रतिष्ठा निम्नतम अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी।

ऐसे समय पर सर स्टैफर्ड क्रिप्स अपना प्रस्ताव लेकर

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए। एक सप्ताह के अन्दर ऐसे सभी लोग जेल में पहुँच गए जिनका कि कांग्रेस में कोई भी महत्व था। इसके बाद आर्डिनेन्स का शासन शुरू हुआ—गोली चलना लाठी-प्रहार यहाँ तक कि हवाई जहाजों से बमबाजी तक भी कुछ स्थानों पर होने की रिपोर्टें मिलीं। कुछ स्थानों पर लोगों न द्वारा होकर आक्रमणों का जवाब भी दिया रास्ते और पुलिस पर हमले भी किए। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार सामूहिक कोप के फलस्वरूप ५६ व्यक्ति मरे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस संघर्ष में २०० से अधिक निहत्थे और निरपराध लोगों को गोली से उड़ा दिया गया और लगभग ६ ०० को पुलिस और फौज ने घायल किया। लाठी प्रहार से घायल हुए लोगों की संख्या कितने ही दस-सहस्रों तक पहुँची। लगभग डेढ़ लाख स्त्री-पुरुष जेल गए और १२ लाख रुपये सामूहिक जुर्माने के रूप में वसूल किए गए। पुलिस और फौज के द्वारा पहुँचाई गयी यंत्रणाओं और घरों को जलाने लूटने तथा अन्य क्रूरताओं का कोई लिखित प्रमाण नहीं मिल सकता।

यह संघर्ष जो ५ मई, १६४४ तक जारी रहा, वस्तुतः एक विशिष्ट आन्दोलन था और मूतकालीन इतिहास में इसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता। थोड़े-से छिट-पुट हिंसात्मक कृत्य उस सामूहिक जागृति और जनव्यापीय क्रान्ति को अपदस्थ नहीं कर सकते जिसे सारे भारत में मुख्यतः अहिंसात्मक ढंग से जनता ने स्वयं संचालित किया था। गाँधीजी के हाथों में (उनके जेल से बाहर होने की अवस्था में) यह आन्दोलन क्या रूप धारण करता, यह अनुमान का विषय है। किन्तु उनका पथ-प्रदर्शन न होने पर भी—यही नहीं किसी भी उच्च श्रेणी के नेता का पथ प्रदर्शन न होते हुए भी, यह संघर्ष दृढ़तापूर्वक

सहायक-ग्रन्थ

१—'दक्षिण अफ्रीका का इतिहास'

लेखक—मो० क० गाँधी

२—'चम्पारन का सत्याग्रह'

लेखक—डा० राजेन्द्रप्रसाद

३—'बारडोली की कहानी'

लेखक—महादेव देसाई

४—'सत्याग्रह : उसका इतिहास और विशिष्टिमान'

लेखक—रंगनाथ दिवाकर

५—'सत्याग्रह : शक्ति और सत्य'

(उपर्युक्त पुस्तक का अमेरिकन संस्करण)

लेखक—श्री रंगनाथ-दिवाकर

६—'उद्देश्य और साधन'

लेखक—आल्डस हक्सले

७—महात्मा गाँधी

लेखक—रोम्याँ रोलाँ

८—'आत्मकथा'

लेखक—मो० क० गाँधी

९—'धर्मयुद्ध' (गुजराती)

लेखक—महादेव देसाई

१०—'तमसोमा ज्योतिर्गमय'

लेखक—रिचर्ड ग्रीग